बी.ए.पी.एस.स्वामिनारायण संस्था

प्रेरक : परम पूज्य महंतस्वामी महाराज

प्रमुखस्वामी महाराज शताब्दी महोत्सव
1921-2021

1819-2019 वचनामृत द्विशताब्दी महोत्सव

युवा अधिवेशन 2019

निबंध प्रतियोगीता

पुस्तक चलो चले हम अक्षरधाम

प्रथम खंड : सुख का स्त्रोत

(वचनामृत पंचाला प्रकरण - 1 पर चिंतन)

स्वामिनारायण BAPS

सत्संग प्रवृत्ति मध्यस्थ कार्यालय

भाग–1 चलो चले हम अक्षरधाम .....

1. पूर्वभूमिका :

एक बुढ़िया थी।

वह भीड़ भरे रास्ते पर कमर झुका कर कुछ ढूंढ रही थी। राह में चलने वाले एक राहगीर ने पूछा, ''माई क्या खो गया है ?''

'बेटा ! एक अंगूठी थी वह गिर गई है।'

बुढ़ापे की कमजोर नजर अंगूठी जैसी छोटी चीज ढूँढने में मुसाफिर उसकी सहायता करने लगा।

एक घंटे तक ढूँढनें पर भी अंगूठी न मिलने पर मुसाफिर ने बुढ़िया से पूछा, बूढ़ी मॉ ! आप मुझे ठीक से बताएगी कि कौन–सी जगह अंगूठी गिर गई थी ? तो उस स्थान पर फिर से अच्छी तरह तलाश करे।'

तब बुढ़िया ने कहा : 'बेटा ! अंगूठी तो वहॉ अंधेरे में गिर गई है।'

'तो फिर यहॉ क्यों खाक छान रही है ? मुसाफिर ने झुंझलाते हुए खीज निकाली।

तब बुढ़िया ने कहा : 'यहॉ उजाला है न भाई ! इसलिए अंगूठी यहॉ ढूँढ रही हूँ।'

बुढ़िया की मुर्खता पर हम सभी हॅसेगे, परंतु मनुष्य की मूर्खता भी बुढ़िया से कम नहीं है।

हम सभी ऑखो में तेल डाल–डाल कर सुख ढूँढ रहे है। उसकी खोज मे कमर भी टेढ़ी कर देते हैं, फिर भी सुख की प्राप्ति नहीं होती है। उसका यही कारण है कि सुख कहीं और रखा है और हम उसे ढूँढ कहीं ओर रहे है।

रेत को पीस कर तेल कौन निकाल सकता है ? मथनी को मथ कर मक्खन कौन चख सकता है ? उसी तरह मनुष्य सुख प्राप्ति की दौड़ में दिशा हीन हो गया है। समझदार मुसाफिर के लिये पहला कदम रखने से पहले ही सभी दिशाओं का ज्ञान आवश्यक है। मनुष्य सुख रूपी स्टेशन पर पहुॅचने के लिए निकला हैं, लेकिन क्या उसने पता किया है कि, जिस मार्ग पर वह चल रहा है। वह सही है कि नहीं ?

जवाब है – 'नही'

तो सुख प्राप्ति का सही मार्ग कौन–सा है ? कः पन्था ? सुख का सही स्त्रोत कौन–सा है ? इस उत्तर को प्राप्त करने हेतु चलो चले भगवान स्वामिनारायण के वचनामृत पॅचाला–1

सोरठ प्रदेश का छोटा–सा रमणीय गॉव पंचाला। जहॉ फागुन के गुलाबी वातावरण में भगवान स्वामिनारायण झीणाभाई के दरबार में मुढ़े पर विराजमान है। संध्या आरती समाप्त हो चुकी हैं। भगवान स्वामिनारायण के समक्ष बड़े–बड़े परमहंस, भक्त, सभाकार विराजित हो गए है।क

उस समय भगवान स्वामिनारायण उन सभी से प्रश्न कर रहे है:, भगवान में श्रद्धा हो और धर्म में निष्ठा हो तब भी यदि विचारो में दृढ़ता न हो तो अत्याधिक अच्छे जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पंचविषय जो अत्यधिक खराब है जो शब्दादिक पंचविषय यदि बराबर ना हो अथवा उससे भी अधिक बुरे ना हो जाए इसलिये कौनसे विचार प्राप्त करें तब अत्यधिक अच्छे पंचविषय और अत्यधिक खराब पंचविषय दोनों समान हो जाते है अथवा उससे भी अधिक खराब हो जाते है अत्यंत ही विचारणीय प्रश्न है। सूरतीं दूधपाक खट्टी छांछ से भी अधिक खराब लगता है किस विचार से ? सुंदर रेशमी शाल–दुशाला सड़े हुए शड़िये से भी बदतर किस बात से लगता है ? ऐसा ही कुछ भगवान स्वामिनारायण प्रश्न कर रहे हैं।

2. पंचविषय से मोह हटना मुश्किल :

पहली बार में तो यह स्थिति अशक्य ही लगती हैं। गधा कभी भी गाय नहीं बन सकता, उपर्युक्त बाते वैसी ही लगती है, क्योंकि पंचविषय से मोह हटाना मुश्किल है।

सभी को अच्छे पंचविषय ही पसंद है। अच्छा घर, अच्छे कपड़े, अच्छी गाड़ी, अच्छा गाना, सुंदर स्त्री सभी कुछ अच्छा, सुंदर और उत्तम चाहिए वह इंसान की प्रकृति में है।

संयोगवश यदि ऐसा नहीं होता तो वो बात अलग हैं। लेकिन उत्तम की कामना सभी की रहती है। लोग 20–20 लाख रूपये खर्च करके परदेश जाते है, क्यों ? अच्छा प्राप्त करने की कामना। उसके लिए 'करेंगे या मरेंगे' वाली बात होती हैं। मंदिर में सत्संग के लिए आते है तब भी अच्छा कमरा हो। कमरे में एयरकन्डीशनर हो, मच्छरदानी हो, अच्छा भोजन हो तभी सत्संग का सुख आता हैं। यदि सुविधा अच्छी नहीं है, तो सत्संग भी नहीं होता हैं।

लोगों में अच्छे के साथ श्रेष्ठ हो ऐसी भी वृत्ति रहती हैं। अच्छा फ्लेट तो मिलना ही चाहिए, साथ ही सबसे ऊपर का माला मिले तभी रूतबा रहेगा। किसीकी झूठी हवा भी न आए तभी कुछ प्राप्त हुआ। ऐसा बहुत बार लोगों को रहता हैं। अमेरिका में 100 वी मंजिल पर रहने के लिए लोगों में होड़ लगी रहती हैं।

निष्कुणानंद स्वामी कहते हैं :

" नर चाहे राजा होना, राजा चाहे अमर होना;
अमर चाहे इन्द्रपद, इन्द्र चाहे आदय कवि होना।"

अच्छा और श्रेष्ठ के साथ नित्य नवीन प्राप्त होता रहे इसकी भी कामना मनुष्य को रहती हैं। जब आप अमेरिका जाएँ तो बहुत बार गारबेज बैंग (कचरा–पेटी) में से नये–नये टी.वी., लेपटॉप, कम्प्यूटर इत्यादि मिलते है। किस कारण से ? नया आने पर पुराना निकाल देते हैं। उस रिजेक्टेड माल के कोई खरीदार नहीं रहते है। अतः ट्रक में डालकर ले जातें है। जबकि अब इस माल पर बहुत लोगों का ध्यान गया हैं। एक व्यक्ति ने अमेरिका के वेस्टेज से अपना पूरा घर बना डाला हैं! खोजबीन से पता लगा कि वह व्यक्ति अमदावादी था।

अच्छा, श्रेष्ठ, नया मिलना चाहिए उसके साथ एक और इच्छा रहती है कि अधिक से अधिक प्राप्त हो। जो है उससे किसी को संतोष नहीं है। रूमानिया के निकोलाई चोसेस्कु ने 400 कमरे का महल बनाया हैं। 'हमारे पास इतना ज्यादा हैं – उसका क्या दिखावा करें।

इसप्रकार, मनुष्य मात्र को अच्छे पंचविषयों में ही प्रीति रहती हैं। आध्यात्मिक मार्ग में चलने पर भी यह वृत्ति नहीं मिटती है। यहॉ भगवान स्वामिनरायण स्पष्ट कहते है कि 'भगवान से स्नेह हो और धर्म में निष्ठा हो तो भी अच्छे पंचविषय से वृत्ति नहीं जाती हैं।

भगवान और संत से प्रीति होने के कारण बड़ी–बड़ी सेवायें भी करें। कष्ट भी उठाएँ, अरे! बेटा भी साधु बनने सौंप दे। फिर भी पंचविषय से वृत्ति निवृत्त नहीं होती है। पूजा पाठ, टीका–तिलक, व्यसन–त्याग, रविसभा इत्यादि धर्म का अत्यन्त चुस्त पालन करता हो, तब भी अच्छे विषयों से मन नहीं हटता है। इसके लिए विचार करने की आवश्यकता है। तो वह कौन–सा विचार ?!

भगवान स्वामिनारायण कहते हैं : 'भगवान के सुख का विचार।' उसके बिना पंचविषय के राग मिटना कठिन हैं। इस विचार की स्थिरता और दृढ़ता के बगैर कोई भी दो शब्द कठोर शब्द कह देता है तो सत्संग का आनंद भूल जाते है। सेवा करी हो और नाम का उल्लेख न हो तो नाराज हो जाते हैं। सभा में आगे न बिठाए तो सत्संग में पीछे हो जाते है। ऐसी विभिन्न प्रकार की तकलीफे भगवान के सुख के विचार की दृढ़ता के बगैर होने की संभावना रहती हैं। इस सुख के विचार के बगैर कभी भी सच्ची मुमुक्षुता जीवन में नही आती है। हम मुमुक्षु है लेकिन वी.आई.पी. मुमुक्ष! रहने की व्यवस्था, खाने–पीने का अच्छा बंदोबस्त होना चाहिए, तभी मुमुक्षुता टिकती हैं।

परंतु सच्चे मुमुक्षु की पहचान बताई गई है कि –

'भूखा रखू जमीन पर सूलाऊँ, तन की करू खाल;
ऐसा करने से यदि न छोड़े तो, उसको कर दूँ न्याल।'

पहले कोई तीर्थ–स्थान में यात्रा करने जाते थे तो घर से कच्चा अनाज लेकर जाते थे और साथ में भोजन भी ले जाते थे। परंतु ऐसी सच्ची मुमुक्षुता भगवान के सुख में दृष्टि डाले बिना प्राप्त नहीं होती है।

उमरेठ के गंगादत्त को भगवान से स्नेह था। उसी कारण गढ़डा तक श्रीजी महाराज का समागम करने गये थे। परंतु साथ में ईमली ले गये थे। रोज थोड़ी–थोड़ी प्रयोग करते थे। वो जैसे ही समाप्त हुई कि वापस उमरेठ जाने तैयार हो गए। श्रीजी महाराज ने गढ़डा रूकने के लिए बहुत आग्रह किया। किंतु वे मना ही करते रहे श्रीजी महाराज ने कहा; 'आपको क्या परेशानी है ? आप बताइए तो सही। इसप्रकार अचानक क्यों जा रहे है ?'

उन्होंने तो कुछ नहीं बताया, लेकिन उनके साथ उनका बेटा हरिकृष्ण था, उसने कहा; 'महाराज ! पिताजी की ईमली समाप्त हो गई है।'

श्रीजी महाराज ने कहा, तो क्या हुआ ? हम आपको दूसरी ईमली दिलवा देते है।

'नहीं, महाराज ! यहॉ की ईमली चरोतर जैसी नहीं है। 'ऐसा कहते हुए गंगादत्त चले गए। वंथली के घना भगत थे। गुणातीतानंद स्वामी ने उनसे कहा; 'आप साधु हो जाओ।' उन्होंने मना कर दिया। स्वामी ने कहा; आपके घर–परिवार में कोई तो नहीं है किसके लिए मेहनत कर रहे है ?'

तब वह कहते : 'स्वामी ! मेहनत की क्या बात करते है ? शाम को जब खेत से थका–मांदा आता हूँ, लेकिन उस समय भाई के बच्चे 'बापा ! बापा ! कहकर दौड़ते हुए आते है तो पूरी थकान उतर जाती है।'

कैसी आसक्ति !

गुणातीतानंद स्वामी कहते है, 'इस जीव को पॉच चीजे अवश्य चाहिए – अन्न, जल, वस्त्र, निद्रा और स्वाद में नमक उसके बगैर सब कुछ व्यर्थ है।'

परंतु पंचविषय के राग के कारण सुविधा आवश्यकता का स्थान ले लेती है। सत्संगी होने पर भी पचास जोड़ी जूते–चप्पल रखता है। सौ जोड़ी कपडे रखता हैं। इस प्रकार रमणीय पदार्थो में वृत्ति लगी रहती हैं।

महान तत्वचिंतक थोरो का कहना है; ''कही जानेवाली सभी सुविधाये अनावश्यक होती है इतना ही नहिं, हमारी प्रगति में अवरोधकारक भी होती है।'

ग्रीस के प्रसिद्ध विचारक सॉक्रेटिस प्रतिदिन एक सुपरस्टोर में घुमने जाते थे। एक–दो घंटे तक पूरे स्टोर में घूमते, लेकिन कुछ भी खरीदे बगैर वापस चले जाते। दो–चार दिन तक यह क्रम चलता रहा, तब किसी ने उनसे प्रश्न कियाः 'मैं प्रतिदिन आपको इस स्टोर की सीढ़िया चढ़ते हुए देखता हूँ, लेकिन कुछ भी लिये बगैर आप बहार आते है यह बात समझ नहीं आई।'

तब सॉक्रेटिस नें कहाः 'मैं चीजे खरीदने के लिए दुकान में नहीं जाता हूँ, लेकिन मैं वहॉ जाकर सोचता हूँ कि इतनी सारी वस्तुओं के बगैर भी चल सकता हैं।

इसप्रकार की सोच रखने के लिए अलग प्रकार के विचारों की आवश्यकता हैं। वह है परब्रह्म के सुख का विचार। उस विचार के अभाव में मंदिर में व्यवस्था में गड़बड़ हो तो बहुत बार संतो का भी अभाव आ जाता है। भक्तों के साथ भी मतभेद हो जाता है।

योगीजी महाराज एक प्रसंग पर गढ़डा में विराजमान थे। उस समय उन्होंने रमणभाई से कहा : 'रसोई घर में दो पंगत बैठी हो जिसमें एक पंगत में स्वदिष्ट दूधपाक परोसा जाय और आप जिस पंगत में बैठे हो उस पंगत में खट्टी छाछ परोसी जाय, तो संकल्प होगा ?'

रमणभाई ने कहा : उस समय संकल्प हो ही नहीं सकता, सीधी मारामारी ही होगी।'

यह तो उन्होंने उपहास में बात कही, लेकिन इस बात से हमें ख्याल आता है कि हमें सत्संग का आनंद पंचविषय के सुख के कारण आता है। जिस प्रकार सर्दी में अंगीठी के कारण गरमाहट रहती है। उसी प्रकार समैया अद्‌भुत कब ? जब हमारी सारी व्यवस्था अच्छी से अच्छी हो तब। यदि उसमें कोई गड़बड़ हुई, तो पूरा उत्सव व्यर्थ हो जाता हैं। इसप्रकार हमारा सत्संग पंचविषय से जुड़ा हुआ है।

फ्राईड कहते थे; 'जातीय वासना संसार का प्रोत्साहन का स्त्रोत है। (Sex is the motive force of the world) कार्ल मार्क्स ने कहा है : पैसा संसार का प्रोत्साहन स्त्रोत है।'(Money is the motive force of the world).

भगवान स्वामिनारायण कहते है : मनुष्य पंचविषय पर निर्भर हैं। विचार के बिना त्यागी को भी ऐसी परिस्थिति आने में समय नहीं लगता हैं।

भगवान स्वामिनारायण एक परमहंस थे – वैकुठानंद स्वामी उन्होंने किताब बेचकर सुंदर मुलायम घोराजी की दोहड़ (शोल) खरीदी। श्रीजी महाराज को साधु के जीवन में समाया हुआ यह रजोगुण पसंद नहीं आया। उन्होंने वह दोहड़ (शोल) अपने पास मंगवाई और उसे साधु के समक्ष ही जला दिया। उस समय वैकुंठानंद की मनोव्यथा को व्यक्त करते हुए लिखते है –

पंचविषय से मोह हटना कठिन

'कम्बल जला कैसे देखु, होगा मेरा मरण;
मत जलाओं उसे बांध दो, मुश्किल से बदला प्रकरण।
अनजानपने में मैं तो ओढ़ आया, शरीर को ऑच न आई;
अब जो मेरे हाथ आए तो, रखूं मैं दोहड़ में।
आज के पश्चात् ना करू, बहुत हुई बेइज्जती;
नाम बदलु तो व्यर्थ लगे, प्रदान करे फिर यही।
दोहड़ धधक उठी, ठहर न सकी खोट;

धधकती जलती बोलने लगी, लेकर बड़े की ओट।'

एक बार श्रीजी महाराज ने सभी संतो को तुंबडे दिए। संतोने उसे सुंदर तरीके से रंग कर तैयार कर दिया। श्रीजी महारज ने यह देखा। उसमें उन्हें संतो की रागी वृत्ति दिखाई दी। जिससे उन्होने एक बार कहा : 'हमें पानी पीना है।' यह सुनकर सभी अपनी–अपनी तुंबी लेकर आये। भगवान को अपनी तुंबी में पानी पिलाकर उसे प्रसादी भूत करने की इच्छा सभी को थी।

सभी के साथ निष्कुणानंद स्वामी भी अपनी तुंबी लेकर आए महाराज ने उनकी तुंबी देखकर पूछा : 'आपकी तुंबी आड़ी–तिरछी क्यों है ? और किनारी भी ठीक नहीं हैं।'

तब निष्कुणानंद स्वामी ने कहा, 'लेकिन महाराज ! उसमें से पानी की धार होगी तो सीधी ही होगी।' निष्कुणानंद स्वामी की ऐसी समझ और वैरागी वृत्ति से महाराज प्रसन्न हुए।

फिर श्रीजी महाराज ने एक पीटनी (कपड़े धोने की) मंगवाई और सभी संतो की तुंबी की सुंदर सजाई हुई किनारी तोड़ने के लिए तत्पर हो कहाः हम साधुओं को तो हृदय रंगना चाहिए, तुंबड़े नहीं।'

उस समय ब्रह्मानंद स्वामी ने प्रार्थना करी कि; हे महाराज ! अब हम निष्कुणानंद स्वामी के पास है वैसी तुंबी का प्रयोग करेंगे। बस आप शांत हो जाइये।'

श्रीजी महाराज के समय एक नारणदास समाधि वाले थे। एक बार उन्होंने देखा कि श्रीजी महाराज जिनके पास अलफी नहीं थी उन्हें दे रहे थे। उन्हें भी नयी अलफी लेने के इच्छा हुई। लेकिन महाराज ने शर्त रखी कि 'जिसके पास पुरानी होगी तो नई नहीं मिलेगी।' नारणदास के पास पुरानी अलफी तो थी, लेकिन नई की लालच में पुरानी को गाड़ दिया और नई अलफी ले ली। कुछ समय पश्चात कचरा निकालते समय उनकी पुरानी अलफी मिली। यह देखकर श्रीजी महाराज ने कहा : ' जिसे वैराग्य और आत्मनिष्ठा ना हो उसे निर्विकल्प समाधि हुई हो तब भी जब तक समाधि में रहते है तब तक ही सुख–शांति रहती है और जब समाधि में से बाहर आते है तब नारायणदास के सामाने अच्छे पदार्थ को देखकर मन ललचा जाता है।' (वच.ग.अ.1)

कुंडल के राई मॉ को समाधि हुई थी। लेकिन झाडू–पौंछा, कंडे थापना और बच्चे खिलाने से ही फुरसत नहीं मिलती थी। समाधि में अक्षरधाम का सुख त्याग कर इस संसार की क्रिया में रम गये थे।

भगवान स्वामिनारायण ने सत्य ही कहा है कि –

ज्ञान शास्त्रातिविज्ञानां ब्रह्मस्थिति मतामपि।

ब्रह्मानन्दादपि सुखं स्त्रैणं कामाद् विशिष्यते।।

(सत्संग जीवनम् : 4/33/2)

एक बार जूनागढ़ मंदिर में वंथली से गाड़ी भरकर गन्ना आया। गुणातीतानंद स्वामीने सभी से कहा : 'यह गन्ना हरिभक्त हम सभी के लिए लाए हैं। लेकिन सभी ऑखे बंद करके दो–दो गन्ने उठा ले।

सभी ने स्वामी की आज्ञा का पालन किया, ऑखे बंद करके ही गन्ने उठाए। तब भी अंत में गाड़ी में छिलके ही बचे। ऑखे बंद थी इसलिए सभी ने स्पर्श द्वारा अच्छे–विवेक का परिचय दिया।

गोविंदानंद स्वामी साधु बनने निकल पड़े तब रास्ते में राजा की **दासी** उनके रूप–स्वरूप पर मोहित हो गई। उन्होंने कहा : ' मैं आपकी और मेरे पास यह गहने तथा दस हजार रूपयों की मिलकत है यह भी आपकी। आप मेरे साथ विवाह करें। यह सुनकर गोविंदानंद स्वामी सतर्क हो गए। उन्होने सोचा कि 'भगवान की भक्ति करने वालो को सिद्धियॉ आड़े आती है। ऐसा लिखा हैं , वह आज हुआ।'

उससे मुक्त होने के लिए उन्होंने **दासी** से कहा : 'आप यहॉ बैठिये मैं शौच जाकर आता हूँ। उसके पश्चात विचार करते हैं।' **दासी** के विश्वास हेतु अपना कपड़ा भी वहॉ छेड़ दिया और निकल पड़े, और सीधे श्रीजी महाराज के पास गढ़डा पहुँच गऍ।

बुद्धि का फल क्या ?

ऐसे वैराग्यवान थे फिर भी संप्रदाय का इतिहास कहता है कि उन्हें गंगामॉ के दाल–चावल का बंधन हो गया था, पंचविषय से सदैव के लिए राग तूटना सही में कठिन है।

भजनानंद स्वामी ने वैदु कर–करके आधा मन सोना इकट्ठा किया था। साथ ही दूसरे पदार्थ भी इतने थे कि दो पिटारे भर जाये।

एक बार गुणातीतानंद स्वामी, गोपालानंद स्वामी, रघुवीर जी महाराज इत्यादि सभी नावली पधारे। यहॉ एक संत किताब पर रखी हुई पट्टी बॉध रहे थे। स्वामी ने यह देखा तो बोले : अभी तो महाराज के मिले हुए संत बैठे है तब भी कलयुग आ गया, तो आगे क्या होगा ? ऐसा कहकर जिसके पास भी रेशमी पट्टीयॉ थी उसे मंगावा लिया और उसे सभी के सामने मैदान में जला दिया। समस्त संसार त्याग दिया फिर इन छोटी वस्तुओं में भी ममत्व बंध जाता है। घर त्याग देते है लेकिन त्यागी होने के बाद भी कोठार, भंडार नहीं छूटता है। छोटी चीजे, पदार्थ नहीं छोड़ सकते हैं।

3. बुद्धि का फल क्या ?

ऐसे परिस्थिति का निर्माण किससे होता है उसकी बात श्रीजी महाराज यहॉ करना चाहते हैं। उससे किस प्रकार मुक्त हो उसके लिए उनका प्रश्न है। प्रश्न के बाद वही उत्तर देते हैं। परंतु

पहले वे सुंदर भूमिका बांधते हैं। वह कहते है : 'जिस प्रकार परदेश से किसी का पत्र आता है उसे पढ़कर पत्र लिखनेवाले की जैसी बुद्धि होती है वैसी दिखाई देता है। तथा जिस प्रकार पॉच पांडव, द्रोपदी, कुंती जी तथा रूक्मणि, सत्यभामा, जांबवती इत्यादि भगवान की पटरानीयॉ तथा सांब जो भगवान का पुत्र इत्यादि भक्त के रूप तथा वचन सभी शास्त्र में लिखा है, उस शास्त्र के श्रवण करने से उसके रूप का प्रमाण दर्शन जितना ही होता है। तथा उनके वचनों से उनकी बुद्धि का प्रमाण होता है। उसी प्रकार पुराण भारतादिक ग्रंथो से ऐसा सुनने में आता है कि, भगवान जो इस जगत की उत्पति, स्थिति और प्रलय के कर्ता है और सदैव साकार है, और यदि साकार नहीं है तो उसके संबंध में कर्तापन नहीं कहलाता। और जो अक्षरब्रह्म है। वह तो भगवान के रहने का धाम है। ऐसे दिव्यमूर्ति, प्रकाशमय और सुखरूप जो भगवान जो प्रलयकाल में माया में कारण शरीर सहित लीन थे। जो जीव उन्हें उत्पतिकाल में बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राण देते है। वह किसलिये देते है ? तो उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ जो विषय उसके भोगे के लिए और मोक्ष के लिए देते है। और उन जीवों को अर्थ भोग और भोग के स्थानक जो भगवान ने रचे हैं। उसमें उत्तम पंचविषय बनाये है वो बुरे पंचविषय दुःख की निवृत्ति के लिए किये हैं।'

यहॉ श्रीजी महारज बताते है कि किसी का पत्र पढ़ कर उसकी बुद्धि का अंदाजा लग जाता है। प्रश्न करने से प्रश्नकर्ता की बुद्धि का अंदाजा जग जाता है।

एक बार श्रीजी महाराज वैठा पधारे। वहॉ महाराज के ठहरने के स्थान के सामने धर्माचार्य की छावनी थी। एक बार वहॉ कुबेरसिंह और दूसरे कितने ही भक्त गये थे। उस समय धर्माचार्य ने उनसे पूछाः 'स्वामिनारायण की छावनी में बहुत दिए दिखते है उसका तेल कौन भरता है।'

यह बात भक्तो ने श्रीजी महाराज से मिलने पर उन्हें बताई, उस समय महाराज ने कहा : 'बालक की बुद्धि बालक जैसी कहलाती हैं।'

जो रोल्स रोयस में घूमता हो तो वह पेट्रोल भी भरवा सकता होगा, वह बात आसानी से समझ सकते है। इसलिये श्रीजी महाराज कहते है कि किसी का कार्य देखकर उसके कारण को जान सकते है। ऐसा कहकर श्रीजी महाराज अब भगवान के कार्य की बाते करते हुए कहते है कि भगवान ने यह समस्त संसार बनाया है। उसमें मनुष्य भी उत्पन्न किया है और उसे बुद्धि, इन्द्रियॉ इत्यादि दी हैं। वह किसलिए ? उसका एक कारण बताया : 'उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ विषय के भोग हेतु' दूसरा कारण है – लोकांतर की गति के लिये और तीसरा कारण है मोक्ष हेतु इन तीनों की सिद्धि हेतु भगवान ने मनुष्य को देह इंद्रियादिक सभी साज दिये है। यहॉ भगवान ने कहा कि, विषयभोग के लिये इन्द्रियॉ दी है, किंतु उसका विचारपूर्वक भोग करें। अन्यथा मनुष्य और पशु में

कोई अंतर नहीं रहेगा। बहुत से लोग बहस करते है 'भगवान ने सभी कुछ हमारे लिए ही निर्माण किया है, तो फिर किसलिए सबका भोग न करें ? जिसकी रचना कि है वह बुरे पंचविषय की निवृत्ति के लिये ही रचा है ना ? लेकिन ऐसा नहीं है।

बुद्धि का फल – परिणाम क्या ?

भगवान ने जहर भी रचा है, तो क्या उसे खाना चाहिए ? सर्प भी बनाया है, तो क्या उसे बगल में लेकर सोना चाहिये ? इन बातों में जिस प्रकार विचार–पूर्वक व्यवहार करते है उसी तरह पंचविषय के उपभोग में भी विचार चाहिये।

वैसे तो, भगवान ने सृष्टि का निर्माण किया उसमें पंचविषय का सुख मानव को दिया है, लेकिन अब मुद्दे की बात करते हुए श्रीजी महाराज कहते है : '' जिस प्रकार कोई बड़ा साहूकार रास्ते के दोनो तरफ छाया देने के लिये पेड़ लगाता है और पानी का प्याऊ बंधवाता है तथा सदाव्रत करवाता है और धर्मशाला बंधवाता है वह गरीबों के लिये करता है, उसी प्रकार ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादिक देव है वो भगवान के सामने जैसे सडताळा के गरीब होते है और पीपर का फल उबाल कर खाते है वेसे गरीब है। वो ब्रह्मादिक देव मनुष्य के सुख के लिये उत्तम ऐसे पंचविषय की भगवान ने रचना की हैं। और जैसे साहूसार ने सदाव्रत, धर्मशाला इत्यादि सुख रंक के कारण रचे है। उससे अधिक उत्तम सुख साहूकार के घर में होगा ऐसा ज्ञात होता है। उसी प्रकार भगवान ने ब्रह्मादिको के लिये ऐसे सुखों का निर्माण किया है तो उनके धाम में तो उससे भी अधिक उत्तम सुख होंगे, ऐसा बुध्दिवालो को समझ में आ जाता है।

यहाँ श्रीजी महाराज त्रिराशि रखते हुए समझाते है कि साहूकार का कार्य देखकर उसकी संपत्ति का ज्ञान हो जाता है अरब देशो में रास्ते के दोनों तरफ हरी–हरी हरियाली देखने को मिलती हैं। वहॉ अरब शेखों ने हजारों टन विशेष मिट्टी मंगवाई है। उसे बिछाकर, सिंचाई कर वृक्ष उगा कर हरियाली फैलाई है। उसे देखते है तब पता लगता है कि 'उन्होंने इतना अधिक खर्च करके वृक्ष उगाए है, तो उनके पास कितनी संपत्ति होगी।'

इस संसार में बड़े–बड़े अधिकारियों के बंगले में नौकर रहते है, क्योकि अधिकारी तो देश–परदेश कही पर भी घूमते रहते है। अपने घर तो साल के बीच में आते है, ऐसा लगता है मानों नौंकरों के लिए ही बंगला बनाया है। उस समय बुद्धिमान जान सकते है कि, नौकरो के लिये इतना खर्च कर सकते है तो साहूकार के पास कितनी संपत्ति होगी ?'

श्रीजी महाराज वच.ग.प्र 63 में कहते है : 'जिस प्रकार कोई बड़ा राजा होता है, उनके सेवक – सेविकाओं के लिये भी सात भूमिकी हवेलीयॉ रहने के लिए रहती है। और बाग–बगीचे, घोडे,

सामग्री, जेवर इत्यादि सामान के लिये देवलोक जैसे उनके घर होते है, तब उस राजा का वह दरबार तथा उसकी सामग्रीयॉ वह अत्यंत शोभायमान रहती है। उसी प्रकार श्री पुरूषोत्तम भगवान की आज्ञा का पालन करने वाले ऐसे ब्रह्मांड के अधिपति ब्रह्मादिक उनके लोक और उसलोक के वैभव उसकी कोई सीमा नही है।

जिसकी नाभी कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए ऐसे विराटपुरूष के वैभव की सीमा कहॉ जान सकते है ? और ऐसे अनंत कोटि जो विराटपुरूष जिनके स्वामी पुरूषोत्तम भगवान जिनका धाम अक्षर, जिनके संबंध में ऐसे अनंत कोटि ब्रह्मांड जो एक–एक रोम प्रत्येक अणु के समान उड़ते घूम रहे है, ऐसा एक भगवान का धाम है, और उस धाम के लिये पुरूषोत्तम भगवान स्वयं दिव्य रूप धारण कर सदैव विराजमान है, और उस धाम में अपार दिव्य सामग्री है, उस भगवान के वैभव की सीमा कैसे आये ? इस प्रकार भगवान की सर्वोच्चता समझे।'

यहाँ श्रीजी महाराज ने इन्द्र और ब्रह्मलोक की बात कहीं। अभी अमेरिका के सुख को ही इन्द्र–ब्रह्मा के समान मान ले ! वहाँ कितनी सुख–सुविधाएँ है ? तो उसे बनानेवाले भगवान के पास कितना सुख होगा ऐसा श्रीजी महाराज विचार करने के लिये कहते है, क्योंकि इस प्रकार सोचने पर भगवान के धाम में सुख का आधिक्य है वह बुद्धिमान समझ जाते है। और उसमें ध्यान देने पर अच्छे पंचविषय भी बुरे पंच विषय से भी अतिशय बुरे लगने लगते हैं।

फिर, श्रीजी महाराज कहते है : इस संसार में जो पशु, मनुष्य, देवता, भूत इत्यादिक जहाँ–जहाँ पंचविषय संबंधी सुख दिखता है, वह धर्म सहित जो किंचित भगवान के संबंध के कारण है, लेकिन वहाँ जो भगवान में सुख है वैसा किसी में नहीं है। जिस प्रकार यह मशाल जल रही है, उस मशाल के समीप जैसा प्रकाश है वैसा थोड़ी दूर नहीं है और बहुत दूर तो बिल्कुल नहीं, उसी प्रकार दूसरे स्थानों पर किंचित सुख है किंतु संपूर्ण सुख तो भगवान के समीप ही है। और जितना भगवान से दूर होते है उतना सुख में न्यूवता आती है। इसलिये जो मुमुक्ष होते है वह अपने हृदय मैं ऐसा विचार करते है कि, जितना मैं भगवान से दूर जाऊंगा उतना दुःख होगा और बहुत दुःखी होऊगा। और थोडा भगवान के संबंध के कारण ऐसा सुख आता है। इसलिये मुझे भगवान का संबंध अतिशय रखना है और मैं घनिष्ठ संबंध रखूंगा। तो मुझे उत्कृष्ट सुख की प्राप्ति होगी।' ऐसा सोचकर और भगवान के सुख का लोभ रखकर किस प्रकार भगवान का संबंध अधिक रहे वैसा उपाय करता है, उसे बुद्धिमान कहते है। और पशु के सुख से मनुष्य में अधिक सुख है और उससे अधिक राजा का सुख है और उससे अधिक देवता का सुख है। उससे अधिक इन्द्र का है, उससे अधिक ब्रहस्पति का, उससे अधिक ब्रह्मा का, उससे अधिक वैकुंठ लोक, उससे अधिक गोलोक का सुख है और

सबसे अधिक भगवान के अक्षर धाम का सुख है। इस प्रकार भगवान के सुख को अत्याधिक जान कर दूसरे जो–जो पंचविषय के सुख के प्रति बुद्धिमान को तुच्छता हो जाती है। और वह भगवान के सुख के आगे ब्रह्मादिक का सुख मानो वजन गृहस्थ के द्वार पर कोई भिखारी कटोरा लेकर भीख मांगने आया हो उसके जैसा है।'

यहाँ श्रीजी महाराज बताते है कि इस लोक में जहाँ–जहाँ सुख जैसा कुछ दिखता है वह भी भगवान के सुख का लेशमात्र ही है। वच. ग.अ. 28 में कहा है कि –सर्व सुखमय मूर्ति तो भगवान ही है दूसरा पंचविषय में जो सुख है वह तो भगवान के सुख का किंचित ही है।

गुणातीतानंद स्वामी भी कहते है : 'भगवान के धाम में सुख है, उसमें से छिड़काव किया जो प्रकृति–पुरूष में आया और वहाँ से विराट में आया और वहाँ से देवताओं में आया फिर वहाँ से यहाँ मनुष्य में आया है, उस सुख में जीवमात्र सुखी है। इसलिए सुखमात्र का मूल कारण भगवान हैं। उसके सुख से सुखी हो।' (1/182).

आगे, वे कहते हैः 'अक्षरधाम का एक मच्छर पेशाब करता है। उसमें सर्व लोक सुखी है, अर्थात अक्षर का मच्छर जो मूलपुरूष उसकी लघुशंका में सर्व लोक सुखी है।' (5/174) इसप्रकार, संपूर्ण सुख तो भगवान में ही है जो कही और दिखते है वह तो उसका अंश है, ऐसा श्रीजी महाराज समझने के लिये कहते है। जिस प्रकार मशाल जलती है तो उसके समीप में सबसे अधिक प्रकाश का अनुभव होता है, परंतु जैसे–जैसे उससे दूर जाते है वैसे–वैसे प्रकाश कम होता जाता है। उसी प्रकार जितना भगवान के करीब रहेंगे उतना ही सुख अधिक मिलेगा। जितना भगवान से दूर जाएंगे उतनी ही सुख में न्यूनता आती जाती है।

योगीजी महाराज कहते थे कि गधा गन्ने के सूखे छिलके चाटता है। उसी में सुख मानता है, परंतु रस तो कब का कुंडी में चला गया रहता है। उसी प्रकार इस लोक के पंचविषय में हम सुख मानते है जोकि छिलके जैसा है। बाकि संपूर्ण रसमय, सुखमय मूर्ति तो भगवान है।

परम् श्रद्धेय चिदानंदस्वामी ने एक बार बात करते हुए कहा था कि, 'लोकिक विषयों में सुख है ही नहिं। सोलह आने एक आना सुख उसमें कह सकते है लेकिन पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि वो एक आना भी झूठा है।'

मनुष्य के सुख तो ठीक लेकिन देवतालोक के सुख का भी भगवान के सुख के समक्ष कोई हिसाब नहीं है। भगवान के अपार सुख के आगे तो देवता श्री भिखारी जैसे लगते है। निष्कुनानंद स्वामी ने लिखा है :

'कण–कण कार्य से, जन–जन परखते रे,

रहते–रहते आठो पहर जो अधीन....'

ऐसी दशा भगवान के समक्ष इन्द्रादिक देवताओं की है। बुद्धि वालो को यह पता हैं।

हम सभी बुद्धिशाली है। Man is A rational Animal मनुष्य बुद्धिशाली प्राणी है। गधा करोड़ो सालो से जिस प्रकार जी रहा है उसी प्रकार आज भी जी रहा है, क्योंकि , उसके पास प्राकृतिक बुद्धि ही है। जबकि मनुष्य पहले गुफा में रहता था। आज गिरिगुहा से गगन गुहा (स्पेस कॉलोनी) मैं आ गया है, कारण उसके पास बुद्धि है। परंतु इस बुद्धि का क्या फल ? भगवान स्वामिनारायण कहते है :

'मतिमतामिदमेव मतेः फलं विषयतो विरतिश्च हरौ रति :।'

(सत्संगिजीवनम् : 2/51/43)

बुद्धिमान की बुद्धि का फल विषय में से वैराग्य हो और भगवान में प्रीति हो वही है।'

जिस प्रकार आम के पेड़ का फल आम है, पत्ते – डालियाँ नहीं। उसी प्रकार मनुष्य की बुद्धि का फल पैसा कमाना, बंगले बनाना, घूमना–फिरना, खाना–पीना इत्यादि नही है, बल्कि भगवान से प्रीति हो और विषय से वैराग्य हो वह है।

परंतु वैराग्य आये कैसे ? तो बुद्धिशाली गणित लगा सकते है वह सुख की मीमांसा कर सकता है। जितना भी सुख है वह भगवान के कारण है, नही तो पूरा ब्रह्मांड बदबू मारने लगे, वो बुद्धिमान समझ सकता है। जिस प्रकार यदि बिजली बंद हो जाए तो सभी जगह अंधेरा छा जाएगा। मिल या कंपनी बंद हो जाए तो सभी कर्मचारी भिखारी हो जाएंगे, उसी प्रकार भगवान की शक्ति न हो तो सुखमय और जीवंत जगत का अनुभव नहीं होगा। अतः सुख का स्त्रोत भगवान है। यह बुद्धिमान जान सकता है जिसके कारण उसे विषय में से वैराग्य अपनाना सरल होता है।

एक बार गुणातीतानंद स्वामी लोटकावदर की सीमा से जा रहे थे। वहाँ मरे हुए जानवर पड़े थे उसके टुकड़ों से बदबू आ रही थी। उस समय सभी ने नाक पर कपड़ा रख लिया। यह देखकर गुणातीतानंद स्वामी ने कहा : सभी रूक जाइये।'

'अरे, स्वामी ! यहाँ पर कैसे खड़े रह सकते है ? सभी ने कहा।' स्वामी ने कहा : 'यहॉ बैठ कर भोजन करने का मन होगा ?'

'जब खड़े नही रह सकते तो भोजन कैसे खा पाएंगे ?' तब गुणातीतानंद स्वामी बोले : 'प्रकृति पुरूष तक सब कुछ ऐसा ही है। यदि हमारी सत्ता खींच ले तो सब कुछ बदबू मारने लगेगा, लेकिन उस प्रकृति – पुरूष के कार्य में सभी खुश हो रहे है। ' इसप्रकार, स्वामीने समझाया कि समस्त सुख भगवान की दृष्टि के प्रवेश से है।

भगवान स्वामिनारायण गढ़डा में जिनके घर पर रहे उस दादाखाचर को उनके संबंधियों से बहुत कष्ट मिलते थे यह देखकर दादा खाचर से श्रीजी महाराज ने कहा : 'दादा ! मेरे कारण तुम्हें दुःख मिलता है तो हम कहीं और रहने चले जाते है।'

तब दादाखाचर ने गद्‌गद् होते हुए कहा : 'महाराज ! ऐसा मत कहिए। जो कुछ भी सुख है वह आपके कारण है। बाकि संसार है इसलिए दुःख–सुख तो चलता ही रहता है। '

दादाखाचर बुद्धिमान थे। इसलिए पहचान गए कि सुख का मूल भगवान है। इस प्रकार बुद्धिमान सुख की मीमांसा की, त्याग करने योगय विषयों को छोड़ सकते है और ग्रहण करने के योग्य भगवान को रख सकते है।

4) सुख मीमांसा :

अब इस सुख की मीमांसा कैसे करें ? वह कैसी हो ? 'उसकी सुंदर समझ तैत्तिरीय उपनिषद की आनंदवल्ली में दी गई है। उसमें कहा हैः

'सैषाऽऽनन्दस्य मीमांसा भवति। युवा स्यात् साधु युवाऽध्यापकः।
आशिष्ठों द्रढिष्ठो बलिष्ठः। तस्येयं प्रथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्।
स एको मानुष आनन्द :।' (अनुवाक्–8)

हमारी कल्पना के अनुसार मनुष्य का सुख अर्थात उसे एक अच्छा बंगला हो, अच्छी गाड़ी हो, मोटा बैंक–बेलेन्स हो, आज्ञाकारी संतान हो और अच्छी पत्नी हो, लेकिन उपनिषद इन्हीं बातों को समझाते हुए कहते कि कोई युवा हो उसके साथ वह युवा साधु हो। साधु होना अर्थात सज्जन स्वभाव का हो। हिप्पी, माफिया या पंक जैसा नहीं, 'भाई लोग' था आंतकवादी युवा जैसा नहीं।

साथ में, वह अध्ययनशील हो। 35% में उत्तीर्ण हुआ नहीं, बल्कि बहुश्रुत पंडित हो।

आगे कहते है कि वह पंडित और सज्जन युवान आशिष्ठ : हो अर्थात भोजन करने में समर्थ हो। मतलब रोगरहित हो। घी खाकर मोटा हो जाए ऐसा ना हो। पत्थर भी पचा ले वैसा हो। उत्साह से तरोबार हो रोगी को उत्साह नही रहता। जिससे उसे कोई आशा भी नहीं रहती है।

एक बार एक **बछडे ने बछडी से कहा :** 'चलो, पकड़ा पकड़ी खेलते है।' तब उसने कहा : 'वह नहीं झमेगा उसकी जगह कान पटापटी खेलते है।– इसप्रकार जो रोगी होते है वे उत्साह विहीन होते है। लेकिन ये युवा सशक्त होते है।

आगे कहा कि **द्रढिष्ठः** दृढ़ मनोबलवाला हो। 'डॉक्टर बनना ही है ऐसा निश्चय किया हो, तो उसे पूरा ही करे ऐसा हो।

बलिष्ठ : अर्थात बलवान हो। बलवान मतलब किसी की हड्डी पसली तोड़ दे ऐसा नहीं, बल्कि कार्य करने में थके नहीं वैसा हो। ऐसे युवा के लिए उपनिषद कहता है कि 'तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्।' ऐसे नवजवानो के धन से भरी हुई पृथ्वी स्वयं की मिलकियत होती है। बिलगेड्स या ब्रुनेई के सुल्तान भी उसके आगे पानी भरते है। यह सब कुछ जब मिलता है तब मनुष्य का सुख प्राप्त हुआ कहलता है। फिर से सुन लिजीये स्वस्थ, सज्जन, बलवान, विद्वान और समस्त पृथ्वी जिसकी मिल्कीयत है उपनिषद ऐसे नवजवान को मनुष्य के सुख का प्रतिनिधि मानते है।

उपनिषद ने जो यह बताया यह होना बहुत कठिन हैं। सप्तमी और सोमवार साथ में नहीं होते, उसी प्रकार ऐसा नवजवान मिलना मुश्किल है। स्टीवन हॉकिन्स बुद्धिशाली है लेकिन बलिष्ठ नहीं।

इस मनुष्य के सुख से भी सौ गुना सुख मनुष्य गंधर्व का है। ऐसा बताते हुए उपनिषद कहता है : ' ते ये शत मानुषा आनन्दा :। स एको मनुष्य गन्धर्वाण्या मानन्दः। मनुष्यगंधर्व मतलब मनुष्यलोक पर गंधर्व जैसे। ऐसे सौ मनुष्य गंधर्व का सुख एकत्रित हो तब एक देवगंधर्व का आनंद मिलता है। यह बात करते हुए उपनिषद कहता है : 'ते ये शतं मनुष्य गन्धर्वाणामानन्दाः। स एको देवगन्धर्वाणामानन्द :।'

ऐसे सौ देवगर्धवो के आनंद तुल्य एक पितृलोक में रहनेवाले का आनंद मिलता है। उस बात को करते हुए उपनिषद कहता हैः 'ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्द :। स एकः पितृणां चिर लोकानामानन्दः।'

यहाँ पितृलोक अर्थात पितृलोग जहाँ बहुत समय से रह रहे है। वह चिरलोग। इसप्रकार भूलोक, भुर्वलोक और .द्वनिं में रहनेवाले लोगो का आनंद मनुष्य के आनंद से दस हजार गुणा होता है।

उपनिषद आगे कहता है : 'ते ये शतं पितृणां चिरलोक लोकानामानन्दाः। स एक आजानजानां देवानामानन्दः।' पितृलोक में रहने वालों के आनंद से सौ गुना आनंद अजानज देवो का है। देवों में भी विभिन्न कक्षाएं है। जैसे मनुष्यों में लखपति, करोड़पति होते है वैसे।

ऐसे उच्च कक्षा के देवो से भी अधिक सौ गुना आनंद एक कामदेव का है। उपनिषद कहता है : 'ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दा :। स एक : कर्म देवानां देवानामानन्द :।'

ऐसे सौ कर्मदेव के आनदं के बराबर एक देव का आनंद होता है। ऐसे सौ देव के आनंद तुल्य एक इन्द्र का आनंद होता है। और ऐसे सौ इन्द्र के आनंद तुल्य एक बृहस्पति का सुख होता

है। क्योंकि, इन्द्र को भी सम्पूर्ण सुख तो है नहीं। इन्द्र और विरोचन को स्वर्गीय सुखकी उबकाई आ गई थी और ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रजापति के पास गये थे यह बात प्रसिद्ध है। वहाँ भी परस्पर ईर्ष्या – द्वेष के भाव हाने से आनंद नही है। इसलिए कहा : इन्द्र के सुख से भी सौ गुना सुख ब्रहस्पति का है। ऐसे सौ ब्रहस्पति के आनंद से नापे एक प्रजापति का आनंद होता है।

यह गिनती अभी की स्थिति में समझनी हो तो इस प्रकार कह सकते है कि जैसे हमारे पचास रूपये के बराबर अमेरिका का एक डॉलर होता है। हमारे 70 रूपये के बराबर इंग्लेन्ड का एक पाऊंड होता है।

यदि एक रूपया एक पाऊंड या एक डालर के बराबर हो तो कोई भी परदेश नहीं जाएगा। परदेश में एक का पचास मिलता है। इसीलिये सभी जाते है। यह बात अलग है कि प्रश्न भी एक के पचास हो जाते है। परंतु इस प्रकार सौ बृहस्पति के आनंद के बराबर एक प्रजापति का आनंद बताया है। जिस प्रकार पृथ्वी पर आज अमेरिका, इग्लेंन्ड जैसे सुविकसित देश है, भारत जैसे विकासशील देश है और अफ्रीका जेसे अविकसित देश है, उसी प्रकार आनंद की कक्षा उपनिषद में उसी प्रकार बताई गई है। अब आगे कहते हैः ' ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः। स एक प्रजापतेरानन्द :। ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः स एको ब्रह्मण आनन्द :।'

सौ प्रजापति के आनंद जैसा एक ब्रहम का आनंद है। यहाँ परमात्मा के आनंद की सीमा नहीं बताई है कि सौ प्रजापति के आनंद जितना परमात्मा का आनंद है। क्योंकि, परमात्मा का आनंद तो अनवधिकातिशय है, अतः उसकी सीमा नहीं होती, लेकिन यहाँ प्रजापति के आनंद से भी अधिक ब्रह्म – परब्रह्म का आनंद है। इस प्रकार समझा रहे है। वह ब्रह्म के आनंद के लिये कहते है : 'स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः। स य एवंवित्। अस्माल्लोकात्प्रेत्य। एतमानन्दमय मात्मानमुपसङ्क्रामाति।'

ऐसे आनंद रूप परमात्मा कैसे है ? उसका वर्णन करते हुए उपनिषद कहते है : 'यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणों विद्वान न बिभेति कुतश्चनेति।' (अनुवाक्–9)

परब्रह्म मन–वचन से अगोचर है और उस ब्रह्म के आनंद में जो डूब जाता है उसे कोई भय नहीं रहता है।

उपनिषद कहते है : :एतं ह वाव न तपति किमहँ साधु नाकरवम्। किमहं पापमकरवमिति। (अनुवाक्–9)

पाप और पुण्य से स्वर्ग–नर्क मिलता है उसकी उसको स्पृहा नहिं है। इसलिये पाप और पुण्य उसके संताप के हेतु नहीं होते है।

इसप्रकार जो जानता है वह अपनी आत्मा की रक्षा करता है। उपनिषद कहते है :' स य एवं विद्धानेते आत्मानँ स्पृणुते। उभे ह्मे वैष एते आत्मानँ स्पृणुते। य एवं वेद ! इत्युपनिषत्।' (अनुवाक्–9)

यहॉ आत्मा की रक्षा करता है अर्थात वह मोक्षस्थिति को प्राप्त करता है। ऐसी बात भगवान स्वामिनारायण कहते है कि जो बुद्धिशाली होते है उसे समझता हैं, परंतु मूर्खो को समझ में नही आती हैं। बुद्धिशाली जानते है कि विषयसुख सदैव दुःख के साथ ही होते है। सुख सदैव दुःख का हाथ पकड़कर ही आता है। हमने इन्द्र, ब्रह्मा का सुख तो देखा नहिं है, लेकिन अब हम पृथ्वी पर आकर और उसके दुःख प्रधान सुख की मीमांसा करेंगे।

5) जीवन का निर्माण ऐसा ही है .....

गुणातीता नंद स्वामी कहते है : जितना भी मायामय सुख है वह सभी बगैर दुःख के नहीं होता है।' (स्वा.वातो–1/25)

जीवन का निर्माण ऐसा, सुख अल्प दुःख अधिक भरे।' कहते है कि 'Life is nothing butA painful pleasure.' जीवन में आनंद है लेकिन दुःखमय है। संसार का सुख तलवार की धार पर गिरे हुए शहद जैसा है। जैसे ही चाटने जाये कि जीभ कट जाए।

एक ग्वालन थी वह दूध बेचने शहर में गई थी। बेचते–बेचते समय हो गया , इसलिये थोड़ा बहुत गगरी में था तो भी उसे रहने दिया और घर की तरफ वापस चल पड़ी। रास्ते में थोड़ा मुलायम गुड़ खरीदा। उसे भी उस गगरी में डाल दिया। थोड़ी दूर जाने पर गधे की मीगनी देखी सूखी हुई मींगनी देखकर ग्वालन ने जलाने के काम मे आएगी ऐसा सोच कर, उसे भी लेकर उसी गगरी में डाल दिया। उसे ध्यान नहीं रहा कि गगरी में दूध और गुड़ है। इस प्रकार, दूध–गुड़ और मीगंनी गगरी में (कंडा) डालकर वह चलने लगी। गर्मी की धूप तेजी से तप रही थी। जिससे गुड पिघलने लगा और सूके हुए कंडे दूध और पिघले हुए गुड़ से भिगने लगा, बाई की लचकती चाल ने सब कुछ एकरस कर दिया। मींगनी पर दूध और गुड़ की परत जम गई। ऐसा करते वह घर पहुँची। गागर उतार कर गाँव में कुछ लेने के लिये गई, उसी समय उसका पति आया। गागर देखकर उसे लगा कि 'मेरी पत्नी शहर से आई है तो क्या लाई है जरा देख तो लूं ! नजदीक जाकर देखा तो मटकी में गुलाब जामुन जैसा गोल–गोल पदार्थ जैसा दिखाई दिया और वह तो खाने लगा। गोबरी पर दूध–गुड लग जाने से मीठें का भी स्वाद आ रहा था और साथ में गोबर की सुगंध भी आ रही थी। फिर भी उसने खाना चालू रखा।

इतने में ग्वालन आई उसने यह सब देखा तो कहने लगी : अरे आप यह क्या खा रहे है। ?'

'शहर की सुखड़ी और क्या ? शहर से तुम जो लाई हो वो लेकिन इसमें गधे के गोबर की गंध आ रही है वह क्या है ? बाई ने कहा : 'हा नहीं, पूरा गोबर ही है। '

ग्वाले की तरह ही हम संसार का पाक खा रहे है। लेकिन साथ में गधे के गोबर की दुर्गंध के समान दुःख की दुर्गंध भी साथ में महसूस होती है।

तभी तो भृतहरि ने लिखा है !

क्वचिद् वीणा वाघं क्वचिदपि हाहेतिरूदितं

क्वचिद् रामा रम्या क्वचिदपि जराजर्जर तनु :।

क्वचिद विद्वदगोष्ठी : क्वचिदपि सुरामत्तकहलः।

न जाने संसार : किं विषयम किमृतमयः।।

कभी इस संसार में वीणा के सुमधुर स्वर सुनाई देते है तो कभी किसी का करून आक्रंद सुनाई देता है। कभी सुंदर रमणीयॉ दिखाई देती है तो कभी वृद्धावस्था से ग्रस्त शरीर नज़र के सामने आता है। कभी विद्वानों की गोष्ठी तो कभी दारू पीकर नशे में धुत्त हुडदंग दिखता है। ज्ञात नहीं होता कि संसार विषयम है कि अमृतमय है ?

है जीवन का निर्माण ऐसा .....

दुःखमय संसार के अनुभव के पश्चात् ही भृतहरि ने राजपाट छोड़ दिया था। ऐसे संसार को धिक्कारते हुए उन्होंने लिखा था :

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता

साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोडन्यसक्तः।

अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या

धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च।।

– जिसका मैं निरंतर ध्यान करता हूँ वह मेरी रानी मुझसे विरक्त होकर अन्य पुरूष को चाहती है। वह पुरूष किसी दूसरी ही स्त्री में आसक्त हुआ हैं। और वह दूसरी स्त्री मुझसे दिल लगा बैठी है। इसलिये उस दूसरी स्त्री को धिक्कार है, उस पुरूष को भी धिक्कार है, मेरी रानी को भी धिक्कार है, मुझे भी धिक्कार है और हम सभी को नचानेवाले कामदेव को भी धिक्कार है।

प्रिन्स चार्ल्स के साथ भी भृतहरि जैसा ही हुआ। जबकि उन्होंने संसार त्यागने की अपेक्षा अन्य पात्र ढूँढ लिया !

हेवीवेइट बॉक्सिंग चेम्पियन मोहम्मद अली ने बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त की, लेकिन सुरा और सुंदरी में सब कुछ गवा दिया। तभी तो प्रभुलाल द्विवेदी ने लिखा है :

'एक समान दिन सुख के नहिं जाते किसी के,

इसीलिए तो चतुर साहिबी से लेश मात्र भी घमंड नहीं करते,

खिलता वह मुरझाता है, निर्मित है जो नष्ट होता है,

जो चढ़ता है वह –वह गिरता है, यह नियम पलटता नहीं।'

चक्र के समान चलता इस संसार में उलट–पलट चलता ही रहता है।

समस्या सहित संसार है।

फिर, जितने भी सुख है वह सभी तो विषय के सापेक्ष ही है। स्त्री मर जाय, स्वास्थ्य खराब हो, धंधे में नुकसान हो तो दुःख होता है। शरीर–सौष्ठव अच्छा हो लेकिन त्वचा पर यदि सफेद दाग दिखाई दे तो तुरंत दुःख प्रारम्भ हो जाता है। कैंसर या एडस् का निदान हो तो गाड़ी–बंगला–बैलेन्स सभी का सुख एक झटके में चला जाता है। शहर में जिस प्रकार शुद्ध दूध मिलना मुश्किल है, उसी प्रकार खालिश सुख मिलना भी दुर्लभ हो गया है।

कालीदस ने मेघदूत में सत्य ही गाया है :

'कस्यात्यन्तं दुःखमुपनतं सुखमेंकान्ततो वा।

नीचैगर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमणे।।'

– किसी को भी सदैव दुःख या सदैव सुख यहाँ कहाँ मिलता है ? घूमते चक्र के पहिए की तरह ऊपर–नीचे होता रहता हैं। उसी तरह सुख और दुःख भी परिवर्तित होता रहता है।

दुःख भरी दुनिया में सुख कहीं मिलता नहीं।' – यह पंक्ति अनेको लोगो के जीवनकाव्य की ध्रुवपंक्ति बन गई है। बार बार यह बात दोहराते रहते है।

एक भरे–पुरे घर में रहनेवाली स्त्री हमेशा रोती रहती थी। किसी ने कारण पूछा तो कहा : 'कुछ नहीं, समझ नही आता।' ऐसा अकेले अकेले रोने वाले इस दुनिया में बहुत है। दिन में दस बार एरंड़ि तेल पीये जैसा मुँह हो जाता है। लेकिन कारण ढूँढने से कुछ नहीं मिलता है।

विश्वविख्यात गायक माइकल जेक्सन आज प्रतिष्ठा और संपत्ति की ऊँचाइयों पर बैठे व्यक्तियों कि गिनती में है। 30 सेकेन्ड के विज्ञापन के लिये वे पाँच करोड़ डॉलर फीस लेते है। एक घंटे के कार्यक्रम के दो करोड रूपये भाव है। बैंक में उनकी जायदाद के रूप में 550 करोड़ डॉलर है। फिर भी संगीत के धूमधड़ाके, लंबी यात्रा और सुंदर स्त्रियों के सहवास से दुःखी होनेवाले व्यक्ति है। उन्होंने ही कहा है।

"People think they know me. But they don't'. Not reallyActually IAm one of the lonliest people on this earth. I cry sometimes, because it hurts. It does To be honest, I guess you could say that it hurts to be me."

–लोगो को लगता है कि वे मुझे पहचानते है लेकिन वास्तव में वे मुझे नहीं पहचानते है। हकीकत में मै इस दुनिया का सबसे अलग–थलग पड़ा हुआ इंसान हूँ। मैं बहुत बार रो पड़ता हूँ क्योकि वो अकेलापन मुझे दुःख देता है।

रावण के पास सोने की लंका थी और मंदोदरी जैसी रानी थी। फिर भी सीता में दिल लगा कर कुरेदकर दुःख खड़ा किया।

सिकंदर विश्वविजय करने निकल रहा था तब गुरू के पाँव छूने गया। गुरू ने उससे इस यात्रा का प्रयोजन पूछा। तब उसने कहा 'दुनिया में विजय प्राप्त कर मेसीडोनिया में आकर आराम करूंगा।'

तब डायोजीनस (ऐरिस्टोटल के शिष्य) ने कहा : 'तो वह आराम अभी कर लिजीए ! कल क्या होगा किसे पता ? और यह बात आश्चर्यजनक रूप से सत्य हुई। सिकंदर को 32 वर्ष में असाध्य रोग हुआ और भारत से वापस लौटते समय बेबीलोन में उसकी मृत्यु हो गई। इकट्ठा किया हुआ भोगने के लिये वह जिंदा ही नहीं रहा अफ्रीका के एक भक्त ने करोड़ो की जायदाद कमाई। फिर और प्रगति करने के लिये उन्होंने फेक्टरी खरीदी। मित्र की बुद्धि और उनकी मिलकियत की साझेदारी परंतु व्यापर में भागीदार ने भयंकर घपला किया। उसका इन्हें इतना बड़ा धक्का लगा कि लकवा हो गया। दुःख भी दुनिया में कहाँ मुफ्त मिलता है ?

नेपोलियन कहते थे "I have enough money to buy comfort, I could have the worldAt my feet, but I haven't seen six happy days in my life."

मेरे पास दुनिया की कोई भी सुविधा लेने जितनी संपत्ति है। मैं चाहूँ तो पूरी दुनिया को मेरे कदमों तले झुका सकता हूँ। परंतु अभी तक मैने अपने जीवन में छः दिन सुख के नहीं देखे है।

उसके पास सोने का मढ़ा हुआ पलंग था, लेकिन उसमें सो नहीं सकता था। उसे डर था कि 'मैं सो जाऊ और कोई मार डाले तो ?' इसलिये बैठे बैठे ही सोता था !!

अंग्रेजी के लिये कहा जाता था कि ' The sun never sets on the British Empire. 'ब्रिटीश साम्राज्य पर से सूर्य कभी भी अस्त नहीं होता है। लेकिन आज वे खत्म हो गए।

कींग सोलोमन ने असंख्य संपत्ति और असीमित सत्ता भोगकर बाद में कहा : "I Am Merely Chasing After the wind" मैने अभी तक हवा में ही हाथ मारा है।

ब्रुनेई के सुल्तान के पास बहुत संपत्ति थी। परंतु भतीजा ऐसा निकला कि नीलाम कर डाला।

विश्वप्रसिद्ध स्थपति, साहित्यकार माईकल एन्जेलो जीवन की डिसम्बर में 90 साल मैं बोलेः मैने मेरी आत्मा के कल्याण के लिये कुछ भी नहीं किया।' दुःख में जिये और दुःख में मरे।

ऐसे तो दुःखमय संसार के अनेक उदाहरण है।

असारे खलु संसारे सुखभ्रान्तिः शरीरिणाम्।

लालापानमिवांगुष्ठे बालाना स्तन्यविभ्रमः।।

छोटा बालक अंगूठे को स्तन मान कर चूसता रहता है उसी प्रकार संसार में वास्तव में मनुष्यों को सुख की भ्रांति हुई है। देर–सवेर उससे बोर होता है। विषय संबंधी सुख की उबकाई आ जाती है। फिर अंदर के इस बजते खालीपन को भरने के उपाय स्वरूप वह विभिन्न मनोरंजनों की तरफ जाता है। दुनिया पर खड़े हुए विशाल एम्युझमेंट पार्क हकीकत में तो मनुष्य के अंदर से अधूरेपन को भर नही सकते है। परंतु उससे ध्यान हटाकर 'मैं आनंद में हूँ ऐसी मिथ्या दिमाग में रखने के स्थानमात्र है।

एकबार रशियन चिंतक मेक्सिम गोर्की अमेरिका गये। उन्हें अमेरिका में आयोजित बड़–बड़े मनोरंजन के स्थान बताए गये। उस समय किसी ने उससे पूछा : 'आपको हमारी ये रचनाएँ कैसी लगी ?'

तब ऑख में आंसू भर कर मेक्सिम गोर्की ने कहा : 'यह देश कितना दुःखी है कि उसे इतने सारे मनोरंजन के स्थानों की आवश्यकता पड़ती है ?'

'रीडर्स डायजेट' नाम के सामयिक में एक बार आया था कि 'Fun you experience duringAnAct' बर्फी खाते–खाते आनंद हो। वह 'Happiness – you experienceAfterAnAct.' परीक्षा का परिणाम आता है और जो आनंद होता है वह परंतु इन दो से अनेक गुना अधिक Bliss – ब्रह्मानंद है। जो Act (क्रिया) तो क्या, किसी की भी अपेक्षा नही रखता है। वह दुर्लभ है।

आज पश्चिम के कितने ही देशों में बहुत से लोग कार से परेशान हो गये है। जिससे वे महंगी बड़ी कारे छोड़कर गधे पर डालर और पान्ड चुका कर सवारी कर रहे है। अच्छे कपड़ो से उब गये है। जिससे फटे हुए कपडे पहनने की प्रथा धनाढय लोगो में प्रारंभ हो गई है। केलिफोर्निया में तो बहुत से लोग गाड़ी – बंगला सब कुछ होने पर भी झोपड़ी में रहने जाते है। यह सब कुछ उसका आनंद प्राप्त करने के लिये करते है। सभी को भौतिक सुख की उबकाई आ गई है। स्वीडन में एक आदमी के लिये दो गाड़ी और एक–एक स्वीमिंग पुल है। फिर भी लोगो को बोरियत होती है।

अर्नेस्ट हेमिंग्व और स्टीवन झवेग जैसे नोबल पुरस्कार विजेताओं ने तो इस बोरियत से मुक्त होने के लिये आत्महत्या कर मर गए।

गुणातीतानंद स्वामी ने कहा है उस प्रकार, प्रकृति पुरूष के लोक तक राख की ही पुड़िया है। जहाँ अधूरे पन का अहसास है। वहाँ तृप्ति की डकार आती ही नहीं है। संसार रूपी कपड़ा

भगवान ने ऐसा बनाया है कि पाँव ढँकने जाय तो सिर खुला रहता है और यदि सिर ढंकने जाये तो पाँव खुले रहते है। एक बिलस्त कम है।

सी.एस. लूईस नामक लेखक ने 'Mere Christianity' किताब में थॉमस मोनाहन नामक धनकुबेर की बात लिखी है। वह अनाथआश्रम का रहनेवाला 1960 में उसने पहला 'पीझाहट' बनाया। मात्र 29 साल में वह 5,000 'पीझाहट' का मालिक बन गया। 250 मिलीयन डॉलर का टर्नओवर रहता था। 4 लाख डॉलर (2 करोड रूपये), की तो रोलेक्स घड़ी पहनने लगा। फिर भी अंत में ऊब कर बोले ? 'इन सभी सुखों के पीछे क्या फायदा हुआ ? केवल हाथ –पैर ही तो मारे ना। वह सादे कपड़ो में और सादे बंगले में रहने लगा।

'रोक एन्ड रोल' की ताल पर विश्व को नचाने वाले ऐल्वीस प्रेसली ने छोटी सी उम्र में ही अद्‌भुत कीर्ति, संपत्ति सब कुछ प्राप्त कर लिया था, फिर भी वह आत्महत्या करके मरा है। ऐसे समय पंचविषय के सुख की असारता बताए बिना नहीं रहती है।

यह सब जान–सुनकर बहुत बार हम सभी को प्रश्न उत्पन्न होता है कि असीमित विधाएँ होने पर भी इंसान दुःखी क्यों होता होगा ? इसका एक कारण बताते हुए गुणातीतानंद स्वामी कहते है : सुखी रहना है तो अपने से दुःखी व्यक्ति का विचार करना चाहिए। (स्वा. वातो – 4/84)

यह दृष्टि व्यक्ति आज खो बैठा है। उसके पास साईकल है तो वह पैदल चलकर जाने वाले व्यक्ति को न देखते हुए स्कूटर लेकर घूमने वाले व्यक्ति की तरफ देखता है। स्कूटरवाला साईकल वाले की तरफ न देखते हुए कार वाले को देखता है जिसके कारण दुःख उसका पीछा नही छोड़ता है।

प्रमुख स्वामी महाराज बहुत बार कहते है 'आपके पास कार हो तो विचारकरे कि हिन्दुस्तान में कितने ही लोगों के पास घूमने के लिये साईकिल नही है। कि तने ही नंगे पाँव घूम रहे है। उनको देखो तो जो है उसमें संतोष होगा।'

हितोपदेश भी कहते है : 'उपर्युपरि पश्यन्तः सर्व एव द्ररिद्रति। अपने से अधिक को देखनेवाला सदैव दुःख में रहता है।

एक भाई आम का टोकरा लाए। खोल कर देखा तो एक आम खराब थी। उसने सोचा कि 'पहले यह खराब वाली आम खा लेता हूँ बाद में शांति से अच्छी वाली खाएंगे। 'ऐसा सोचकर खराब आम खा गए। दूसरे दिन दूसरी बिगड़ गई थी। 'जिससे उसे पहले खालूं' ऐसा सोचकर, उसे खाया, इस प्रकार यह महिने भर तक खराब आम ही खाता रहा। उसी प्रकार हम भी अच्छे की तरफ न देखकर खराब ही देखते रहते है। हमें भगवान ने जो दिया है उसे ना देखते हुए जो खोया है उसकी गिनती में ही रचे–बसे रहते है। जिससे सदैव दुःख की अनुभूति रहती है। बड़े

शहरों की एयर कन्डीशन ऑफिस में बैठनेवाले भी इस दुःख के दोझख में तपते है। तभी तो योगी जी महाराज कहते थे : मुंबई में शेठ लोगों के हृदय इतने जले हुए रहते है कि दाल–चावल मिला कर भगोना उन पर रखेंगे तो बिना ईंधन के खिचडी तैयार हो जाएगी।'

एक शेठ के पास सात पीढ़ी तक चले उतनी संपत्ति भगवान ने दी थी। तब भी उसकी नींद उड़ गई थी। पत्नी ने कारण पूछा, तो शेठ ने कहा, 'सात पीढ़ी तक चले उतना है, लेकिन आज मुझे विचार आया कि आंठवी पीढ़ी का क्या होगा ?

दुर्योधन को हस्तिनापुर जैसा राज्य था फिर भी अशांति रहती थी। जिसके कारण शरीर में भी दर्द रहने लगा। उसके भाईयों ने वैद्य–हकीमों के पास बहुत इलाज करावाए। लेकिन दुर्योधन की स्थिति नहीं सुधरी। फिर सभी भाईयों ने मिलकर दुर्योधन से ही इस विषय में पूछा तब उसने कहा : 'मेरी इस बिमारी का इलाज कोई वैद्य नहीं कर सकता है। ' सभी को आश्चर्य हुआ कि ऐसी कौन–सी लाइलाज बीमारी लगी होगी ? दुर्योधन ने कहा : 'युधिष्ठिर प्रतिदिन 10,000 ब्राह्मणो को भोजन करवाता है और दक्षिणा में सोनामहोर देता है। और वह सभी युध्दिष्ठिर की जय कहते हुए अपने महल के आगे से जाते है। यह देख कर मेरा हृदय जल जाता है।' दूसरों के सुख से दुःखी होने की यह प्रकृति के कारण मनुष्य सदैव अशांति में रहता है। पड़ोसी के घर में फ्रिज आया तो बगलवाले को जलन होती है और वह बिगड़ता है तो खुश होता है कि 'अब ठंडे पानी के बगैर रहेगा।'

बहुत लोगों के पास 365 जोड़ी कपड़े होते है लेकिन कहाँ पहने उसका दुःख रहता है। कितनो के पास कार होती है लेकिन रोल्स रोयल नहीं है उसका दुःख रहता है।

इसलिये मुक्तानंद स्वामी कहते है :

'राजा भी दुःखी रंक भी दुःखी, धनपति दुःखी विकार में.....

इसप्रकार, अनेको प्रकार की मनुष्य की समस्याएँ है। प्राप्त सुख को भी ऐसे दुःख पत्थर चाले करके भोगने नहीं देते हैं। तब स्थिर, शाश्वत सुख कहॉ प्राप्त हो ? वह प्रश्न उतना ही ज्वलंत रहता है। तब भगवान स्वामिनारायण हमें ऐसा विचार दे रहे है कि जिससे पंचविषय से मोह हटता है। इस विचार के बगैर भगवान स्वामिनारायण ने कहा है कि फटी हुई लंगोटी और तूटी हुई तुंबी में से मन को हटाना मुश्किल होता है।

भगवान स्वामिनारायण कहते है कि परमात्मा के सुख का विचार करना चाहिये और साथ–साथ में इस लोक के सुख का भी विचार करना चाहिए। क्योंकि कोड़ी और सोनामोहर दोनों का यथार्थ

ज्ञान हो तो कोड़ी छोड़ देते है और सोना मोहर के लिये प्रयत्न होते है। अन्यथा कोडी के विचार से भी मन नहीं हटता है।

एक बार भगवान स्वामिनारायण कारियाणी में विराजमान थे। किसी भाविक भक्त ने आम की टोकरी लेकर उनके समक्ष रखी थी। वह देखकर वस्ताखाचर के पुत्र जेतोखाचर उसमें से आम लेने के लिये समीप आया। महारज ने हल्के हाथों से दूर किया। नजदीक नहीं आने दिया और आम नही लेने दी। लेकिन फिर से जेता ने प्रयत्न किया। फिर से महाराज ने उसे आम तक पहुँचने नहीं दिया। वह फिर से आया तब महाराज ने कहा : 'तुम अपने गले में से यह सोने की चेन निकाल कर मुझे दोगे, तब तुम्हें आम दूँगा।' जेता ने एक पल भी गंवाये बगैर सोने की चेन निकाल कर दे दी। और बदले में एक आम लेकर दौड़ते–दौड़ते चला गया। यह देखकर महाराज ने वहाँ उपस्थित संत–भक्तो को सीख देते हुए कहा : देखा इसे कोई विचार है ! पूरा कारियाणी गॉव पेट भर कर खा ले इतने आम इस चेन से आ सकती है, लेकिन एक आम के लिये उसे दे दिया।'

उसी तरह हम भी भगवान का अति अपार सुख छोड़कर इस संसार के सुख में ही आनंद मान बैठे है।

6. अक्षरधाम का सुख अत्यधिक

भगवान स्वामिनारायण कहते है : ''इसलिये जो मुमुक्ष हो वह अपने हृदय में ऐसा विचारे कि, 'जितना मैं भगवान से दूर जाऊंगा उतना दुःख होगा और महादुखिया बनूंगा। और जो थोड़ा भगवान के संबंध के कारण सुख प्राप्त होता है, इसलिये मुझे भगवान का संबंध अतिशय रखना है और मैं अति संबंध रखूंगा तो मुझे उत्कृष्ट सुख की प्राप्ति होगी।' ऐसा सोच कर और भगवान के सुख का लोभ रखकर कैसे भगवान का संबंध अतिशय रहे वैसा उपाय करता है, उसे बुद्धिमान कहते है। और पशु के सुख से मनुष्य में अधिक सुख है और उससे अधिक राजा का सुख अधिक है। और उससे अधिक देवता का सुख अधिक है और उससे अधिक इन्द्र का सुख है। उससे अधिक बृहस्पति का और उससे अधिक ब्रह्मा का और उससे अधिक वैकुंठलोक का उससे अधिक गोलोक का सुख अधिक है। और उससे अधिक भगवान के अक्षरधाम का सुख अति अधिक है। ''

यहॉ भगवान स्वामिनारायण गोलोक, वैकुंठादि धाम से श्री भगवान का सुख अति अधिक कहते है। वच. ग.अं.2 से. भी भगवान के धामों का तारतम्य बताते हुए उन्होंने कहा है : 'जैसी बद्रिकाश्रम में सभा है और जैसी गोलोक, वैकुंठादिक में सभा है, उससे भी अधिक मैं सत्संग की सभा को अधिक देखता हूँ।'

आगे, वच. अम. 7 में कहा है : 'अगणोत्तर के अकाल में हम बीमार हुए थे तब हम क्षीरसागर जहा शेष शय्या पर शेषशायी नारायण सो रहे है वहॉ गये। तब वहॉ हमने रामानंद स्वामी को देखा, उन्होंने सफेद धोती पहनी थी और उपवस्त्र ओढ़ा था। ऐसे दूसरे भी कितने ही शेषशायी नारायण के चरणविंद के समीप बैठे थे। वह हमने देखा। तब हमने नारायण से प्रश्न किया कि, ''यह रामानंद स्वामी कौन है ?' बाद में नारायण ने कहा की, 'वह तो ब्रह्मवेत्ता है।' इसप्रकार नारायण कह ही रहे थे कि, संत रामानन्द स्वामी तो उस नारायण के शरीर में लीन हो गये और उसके बाद हम शरीर में वापस आ गये। तत्पश्चात् हमने अंर्तदृष्टि करी तब प्रणवनाद को देखा। उसे देख ही रहे थे कि **नंदीश्वर बैल** आया, उस पर बैठ कर कैलास शिवजी के पास गये। और वहॉ गरूड़ आया, उस पर बैठकर वैकुंठ तथा ब्रह्मधाम के लिये चले पड़े। वहॉ गरूड़ भी नहीं उड़ सका, इसलिये हम अकेले ही वह सर्व से परे ऐसा जो श्री पुरूषोत्तम का धाम है वहॉ गये। वहॉ भी मैं ही पुरूषोत्तम हूॅ मेरे अलावा दूसरा कोई बड़ा दिखा नहीं। इतने स्थानों पर घूमें और फिर हम देह में वापस आ गए और इस अंतर परिवर्तन की तरफ देखा तब ऐसा ज्ञात हुआ कि, सर्वे ब्रह्मांड की उत्पति, स्थिति और प्रलय उसका कर्ता भी मै ही हूॅ। और अनंत ब्रह्मांड के असंख्य शिव, असंख्य ब्रह्मा, असंख्य कैलाश, असंख्य वैकुठ और गोलोक, ब्रहम्पुर और असंख्य करोड़ अन्य भूमिकाऍ वह सभी मेरे तेज के कारण तेजायमान है। और फिर मैं कैसा हूॅ ? तो मेरे पॉव के अंगूठे से पृथ्वी को हिला दूं तो असंख्य ब्रह्मांड की पृथ्वी हिलने लगेगी और मेरे तेज के कारण सूर्य, चन्द्रमा, तारे, इत्यादि सभी तेजायमान है। ऐसा मैं हूॅ यदि मेरे सबंध में ऐसा सोचकर निश्चय करे तो भगवान ऐसा मैं हूॅ। तो मेरे लिए मन स्थिर हो और किसी भी किंमत में व्यभिचार को प्राप्त न हो।'

इसप्रकार, भगवान के धामों के भेद श्रीजी महाराज ने स्पष्ट कहे है। गुणातीतानंद स्वामी ने भी :वार्ता' में कहा है :

'एक समय गॉव **जाळिया** में श्रीजी महाराज बहुत देर बाद सोकर उठे। तब सभी संतो ने पूछा कि, 'हे महाराज ! आज तो आप बहुत सोये।' तब महाराज ने कहा, 'आपने बहुत तप किया तो हम प्रसन्न हुए। इसलिये तो आज हम आपके लिए धाम देखने गये थे तो सर्वप्रथम हम बदरीकाश्रम गए उस बदरिकाश्रम वासीयों ने हमारी पूजा, आरती, स्तुति करी। फिर हमने कहा कि, 'हमारे साधु के लिए स्थान देखने आए है। ' तब उन्होंने कहा कि, ' हे महाराज ! यह धाम आपका ही है, अतः साधुको यहीं रखिये।' बाद में हमें ज्ञात हुआ कि, ऐसा तो चरोतर भी है, क्योंकि जो कोठे बेर है वहॉ भी मिलते है। बाद में हम वहॉ से श्वेतद्वीप में गये, तो वहॉ के वासीयों ने हमें बिठाकर पूजा, आरती, स्तुति करके बैठे फिर हमसे कहाकि, 'हे महाराज ! बहुत दया करी जो दर्शन दिये।' फिर

हमने कहा कि, हमारे साधु के लिये स्थान देखने आये है।' तब उन्होने कहा कि, हे महाराज ! यह धाम आपका है, इसलिये यहॉ साधुको रखिये।' फिर हमें पता लगा कि, स्थान तो बहुत अच्छा है, लेकिन प्रभु स्मरण का सुख नहीं दिखा। किसलिये तो, क्षीर समुद्र एक तरफ ही बहता रहता है, उसे देखकर हम निकल पड़े और वैकुंठलोक मैं गए। वहॉ वैकुंठवासी रामचदजी उन्होंन हमारी पूजा, आरती, स्तुति की और बैठे। फिर हमने कहा कि, 'हमारे साधु के लिये स्थान देखने आये है।' तब उन्होंने कहा कि, 'हे महाराज। यह धाम आपका है, इसलिये साधु को यहॉ रखिये।' बाद में हमें उसमें कुछ अच्छा नहिं दिखा, क्योंकि, चार भुजा और स्त्रियों का प्रसंग वह उचित नहीं। फिर वहॉ से हम गोलोक में गये। वहॉ के निवासी है श्रीकृष्ण उन्होने हमारी पूजा, आरती और स्तुति की और बैठे। तब उन्हें कहा कि, 'हमारे साधु के लिये स्थान देखने आए है। 'तब उन्होंने कहा कि, 'हे महाराज ! यह धाम ही आपका है, अतः साधु को यहॉ रखिये। बाद में हमें उसमें भी कुछ अच्छा नहिं दिखा। क्योकि गोप, गोपी, और गाय उसे देखकर प्रभु स्मरण नहि होता और कितनी ही प्रकार की गड़बड़ देख कर हम चल पड़े, और प्रकृति–पुरूष के लोक में गये वह लोक देखकर बहुत प्रसन्न हुए कि यहॉ साधु को रखे। तभी पुरूष और प्रकृति दिखाई दिये। उसे देखकर हमने प्रकृति से पूछा कि, 'तुम गोरी क्यों हो और पुरूष काला क्यूं है ? तब उसने कहा कि, 'वह पुरूष मेरे साथ जुड़ा उसके कारण मुझमें में जो श्यामता थी वह पुरूष में गई और पुरूष में रूप था वह मेरे में आ गया है। ' बाद हमें ऐसा विचार आया कि यहॉ साधु को नहीं रखना चाहिये, क्योकि, माया काला कर देती है। तब हम चल पड़े तो अक्षरधाम में गये। वहॉ अक्षरधाम के मुक्तों ने दिव्य सिंहासन पर विराजित कर हमारी पूजा, आरती और स्तुति की। फिर हमने कहा कि, 'हमारे साधु के लिये धाम देखने आए है। 'तब मुक्तों ने कहा कि, 'हे महाराज ! यह धाम आपका ही है और हम भी आपके ही है, अतः साधु को यहॉ रखकर आपकी मूर्ति का सुख प्रदान करें।' बाद में हमें पता लगा कि, 'इस धाम के जैसा कोई धाम नहीं है। अतः साधु को यहीं रखना ठीक है। (3/11).

इसप्रकार, सर्व धाम से भी अधिक अक्षरधाम का सुख है। ऐसा स्पष्ट रूप से कहा गया है। भगवान स्वामिनारायण ने वच. सा. 1 में कहा 'और जो भगवान का अक्षरधाम है उसके समक्ष अन्य देवताओं के जो लोक है, उसे मोक्षधर्म के लिये नरक तुल्य कहा है। ऐसे जो भगवान मुझे प्रगट मिले है। उसे छोड़कर नर्क के कुंड जैसे विषय के सुख उसे मैं क्या इच्छू ?'

महाभारत के शांति पर्व में कहा है कि 'एते वै निरया स्तात स्थानस्य परमात्मन :।' (191/6).

वच.सा.11 में भी यही कहा है कि 'देवलोक को भगवान के धाम समक्ष मोक्षधर्म के लिये नरकतुल्य कहा है।' वच. ग.म. 47 में तो कह दिया कि, 'जिस प्रकार दीर्घ शंका के लिये जाते है

और पायखाने में सिर के बल गिर जाते है तो नहा–धोकर पवित्र होते है लेकिन वहॉ पड़े नहीं रहते है। उसीप्रकार शुभ वासना रखते–रखते ब्रह्मलोक मैं या इन्द्रलोक में ये तो ऐसा माने कि, सिर के बल नर्क के गट्ढे में गिर गये है। ऐसा जानकर शुभ वासना के बल के द्वारा भगवान के धाम में पहुच जाए, लेकिन बीच में कहीं न रहे ऐसा निश्चय रखना चाहिए।'हम इस लोक के दुःख सहित सुख को देख सकते है।

लेकिन इन्द्र, ब्रह्मा के दुःख सहित सुख को नहीं देख सकते है, परंतु महाराज के वचन में विश्वास रख कर यह समझे कि उन देवताओं के लोक के सुख में भी कोई फायदा नहीं है। प्रकृति में से बना हुआ सभी काल का भक्ष्य है। प्रकृति तक माया है। जिससे उसका और उसमें से उत्पन्न सभी का आनंद भी क्षणिक है।

इसीलिये निष्कुणानंद स्वामी कहते है :

'प्रकृति पुरूष प्रलय में आए, भवब्रह्मा ना रहे कोई रे;
चौदह लोक धाम रहना ना पावे, सर्वे संहार होय रे।
जैसे कडाही में कण उछलता है, ऊँची–नीची अग्नि ज्वाला रे;
वैसे यदि तनधारी जलता है, स्वर्ग–मृत्यु के पाताल मैं रे।
अतः सुख नहीं किसी में भी प्रभुजी के पद पखी रे।
निष्कुणानंद कहे भूलता है क्यों, लो यह बात लिख तुम यह रे;
जिस धाम को पाकर प्राणी, पीछे हटना नहीं रे।
सर्वे पर है सुख की खान, कहने लायक कहे तभी कथी रे।
सुख–सुख जहॉ सुख के दरिया, वहॉ बस रहे वास रे।
तेज तेज जहाँ तेज अंबार, तेजोमय तन उनके रे।
उस तेजमध्य सिंहासन शोभे, वहॉ बैठे बहुनामी रे;
निष्कुणानंद कहे मन लोभे, पूरण पुरूषोत्तम पाकर रे।'

इसप्रकार, सभी धाम के सुख से अधिक भगवान के धाम का सुख अधिक है।

बुद्धिमान को यह पता लगे फिर 'विषयतो विरतिः' (विषयमें) वैराग्य और 'हरौ रतिः (भगवान में प्रीति) हो।

'वचनविधि' में निष्कुणानंदस्वामी ने सभी देवताओं के स्थान बताये है। वह कहते है :

'ब्रह्मा को रखा सत्यलोक में, शिव को रखा कैलास;
विष्णु को रखा वैकुंठ में, ऐसे दिया अलग निवास।

इन्द्र को रखा अमरावती, शेषजी को रखा पाताल,

जहॉ–जहॉ हरि ने की आज्ञा, वहॉ रहे सुख से सदाकाल।

बद्री तले रखे ऋषिश्वर, निरन्न मुक्त रखे श्वेतद्वीप में,

गोप–गोपी रखे गोलोक में, रखे मुक्त अक्षर समीप में।'

इस प्रकार, यहाँ पर सर्व लोक और धाम से अधिक भगवान का अक्षरधाम अधिक है। वह बात निष्कुणानंद स्वामी बताते है। उसके समक्ष दूसरे लोक और वैभव कैसे है, उसकी बात करते हुए श्रीजी महाराज कहते है :

''और उस भगवान के सुख के आगे ब्रह्मादिक का सुख तो, ऐसा मानो भारी गृहस्थ के दरवाजे पर कोई भिखारी कटोरा लेकर माँगने आया हो उसके जैसा हैं और उस भगवान के धाम के सुख का जब विचार करते है तब सर्व जो दूसरे सुख उससे उदास होकर मन में ऐसा होता कि, 'इस देह को त्याग कर उस सुख को कब प्राप्त करें ?''

साहूकार के भोज में पत्तल में से दाने के लिए छीना झपटी करते हुए गरीबों जैसी अक्षरधाम के सामने अन्य लोक की समृद्धि है, वह यहॉ श्रीजी महाराज कहते है। फिर भी मनुष्य का पामर स्वभाव ऐसा है कि उसे इस लोक के सुख में से वृत्ति हटती नहीं है और भगवान में नहीं लगती है।

7. मनुष्य स्वभाव की पामरता

एक बार गुणातीतानंद स्वामी के पास एक मुमुक्षु आया। उसने स्वामी से कहा : 'मुझे सभी धाम की बात करिए।' गुणातीतानंद स्वामी ने सभी का वर्णन करने के बाद अक्षरधाम का वर्णन किया। फिर पूछा : 'अब आप बताओं कि इसमें से किस धाम में रहना है ?'

तब उसने कहा : 'आप ने बात कही उस प्रमाण से तकिया जैसी आम है उस धाम में मुझे स्थान दीजिए।'

सूरती दूधपाक दे ऐसे संत से भी खट्टी छाछ माँगी, कैसी पामरता !

'सोने का है पिंजरा, मनहर मेवा खाय;

तो भी पामर कौआ, मांस देख ललचाय।'

जाते हुए भी हम छोड़ नही सकते है।

एक राजा निःसंतान था। उसने ढिंढोरा पिटवाया कि 'मेरे सिंहासन से 1 किलोमीटर का अंतर जो 24 घंटे में पूरा करके आएगा उसे मैं अपनी गद्दी सौपूंगा। 'ढिंढोरे की इस बात को सुनकर बच्चे बुढ़े सभी रेस में उतरने तैयार हो गये, क्योंकि अंतर था मात्र एक किलोमीटर और समयावधि थी 24 घंटे। परंतु राजा होशियार था। उसने रास्ते में मोहमयी नगरी खड़ी कर दी। सभी ने दौड़ना

प्रारंभ तो किया, लेकिन मार्ग में कही हॉटल देखी, थियेटर देखे, सायबर कॅफे और डिस्को पार्लर देखा। सभी को लगा कि '24 घंटे में 1 किलोमीटर ही तो काटना है ! चलो जरा इसमें भी घूम कर आ जाए।' ऐसा कह कर सभी जो–जो अच्छा लगता था उसमें जाने लगे। उसमें वह सभी गये कि वापस निकले ही नहीं। इस तरफ राजा तो हार लेकर विजेता को बधाई देने खड़ा था, लेकिन कोई भी उस तक नहीं पहुँच सका। सभी जानते थे कि राजगद्दी मिलने के बाद यह सारा सुख हमारा ही है, लेकिन छोड़ नही सके। इसी प्रकार भगवान भी अपना सुख देने के लिये खड़े है। 'जिसे चाहिये वह आओं मोक्ष माँगने रे.... ' लेकिन जीव विषय में से निकलता ही नहीं है। बीच में माया रोकती है। विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत्। भगवान की माया जगत को सम्मोहित कर जीव को भगवान तक पहुँचने नहीं देती है।

जब भगवान ने प्रह्लाद को अपने साथ हवाई जहाज में बैठ कर धाम में चलने को कहा, तब प्रह्लाद ने कहा : 'नैतान्विहाय कृपणान विमुमुक्ष एको।' (भागवत–7/9/44) – मेरे भाई बंधुओं और प्रजाजनो को अकेला छोड़कर मैं नहीं आऊंगा। इन सभी को साथ ले चलिये।

भगवान ने कहा : 'ठीक है तुम जाओं और जिसे आना हो उसे ले आओ। मैं उन सभी को धाम में ले जाऊंगा।' प्रह्लाद तो खुश होकर दौड़ा, लेकिन कोई भी आने को तैयार नहीं हुआ। अंत में मांस खाने वाली एक सुअर को कहा कि 'तुम मेरे साथ चलो। 'इस गंदगी में से भगवान धाम में ले जाने को तैयार है।' लेकिन अपना भोजन वहाँ नहीं मिलेगा ऐसा सोच कर सुअर ने भी मना कर दिया।

निष्कुणानंद स्वामी कहते है :

'चंदन की सुगंध से रे, अलि अलमस्त है रे;
मक्षिका देख रही है दूर रे,
गुड की गाड़ी रे गींगा को पसंद नहि रे,
जिसे प्रीत पुरीष से भरपूर रे।'

करोड़ो मनवारा लेकर महाराज आए है, लेकिन हम बेटे–बेटी की शादी, धंधे–व्यापार के सौदा निपटाना ओर बेटे–बेटी के मुँह देखने का कार्य बाकी रहता है, और वह पलभर में ही उलझ कर भगवान के धाम के अति अपार सुख को छोड़ देते हैं। परंतु व्यवहारिक कार्य तो किसी के समाप्त नहीं हुए है। बारह महीने का वर्ष और तेरह महीने का कार्य है। किसी का भी पूरा नही हो सकता है।

योगीजी महाराज दृष्टांत देते थे कि एक भरवाड (चरवाहा) सौ जानवर लेकर चराने निकला था। दोपहर तपने लगी तब उसने सोचा कि 'अब पेड़ की छाया में बैठ कर आराम करू।' इसके लिये वह सभी जानवरों को बिठाने लगा–सभी को बिठाकर मैं शांति से आराम करूंगा' – ऐसा उसने सोचा। एक के बाद एक जानवर को बिठाते 99 जानवर बैठ गये, लेकिन एक बाकी रह गया।' वह टेढ़ा निकला कि बैठने का नाम ही नहीं ले रहा था। चरवाहे की ऑखे नींद से भरी थी और जानवर बैठ नहीं रहा था, जिससे वह अकुलाया और जोर से बिठाने गया। उस समय बैठा तो सही, लेकिन इतनी जोर से बैठा कि धबाक् से जोरदार आवाज हुई। जिसके कारण 99 जानवर जो बैठ गये थे वह भी खड़े हो गये। चरवाहे को हुआ कि 'देखो यह सिर पर पड़ी ! 'उसने आराम करने का विचार छोड़ दिया।

इस प्रकार संसार में कभी भी कोई कार्य पूरे हो ऐसा नहीं है। लेकिन उसकी भागदौड़ में भगवान के धाम में जाने का लक्ष्य चूक जाते है। इस संसार के मिथ्या सुख में मोह कर उसे छोड़ देते है। नानक के शब्दों में कहे तो कोड़ी को संभाल कर लाल रतन छोड़ देते है। कहा है कि –

'संत चले वैकुंठ में, बैठ विमान के माही;
वहॉ जाय पीछे फिरे, वहॉ भांग–तम्बाकू नाही।'

हमारे अहंभाव – देहभाव का आवरण परमात्मा के असीम सुख तक हमें पहुॅचने नहीं देता है।

नरसिंह मेहता ने गाया है :

'अनंत जुग बीते पंथ पर चलते, अंतर रहा लगार;
प्रभु जी नही वेगणे, आड़ा पड़ा है एंकार।'

निष्कुणानंद स्वामी ने भी कहा है :

'भक्ति करते भगवान की, आई अहं–ममत्व की आड़;
प्रभु के पास पहुॅचते, आडे किये लोह किंवाड।'

जानते हुए भी हम दुःख छोड़ने तैयार नहीं है।

एक बार पंचाला के झीणाबाई को जानलेवा बीमारी लग गई। श्रीजी महाराज भी वही थे। उस समय झीणाभाई की माता ने अपने पुत्र को बचाने के लिये महाराज से प्रार्थना करी। किसी भी तरह अपना पुत्र जीवित रहे उसके लिये प्रार्थना करी, लेकिन पुत्र का आयुष्य पूर्ण हो गया था। जिससे महाराज ने माता को धीरज रहे उस प्रकार बात करना प्रारंभ किया कि 'इस झीणा को बड़ौदा का राज्य दे तो ?'

माँ तो यह सुनकर बहुत प्रसन्न हो गई की पुत्र को जीवीत करने और फिर बड़ौदा स्टेट का राजा बनाने का इस प्रकार दोहरा लाभ। उसने कहाः 'महाराज ! आप ऐसा करो तो तो बहुत अच्छा।'

तब महाराज ने कहाः 'लेकिन बड़ौदा राज्य कहाँ इतना बड़ा है ? उससे तो झीणा को चक्रवर्ती बनादे तो ?' तब माँ ने कहा : 'ओ हो हो ! महाराज आपने तो बहुत दया की झीणा पर।'

'लेकिन उसे इन्द्रलोक का राजा बनाए तो ?'

'अरे महाराज ! आज तो आप बहुत आनंद में है। आपको जैसा उचित लगे वैसा करिये।'

यह सुनकर महाराज ने कहा : 'लेकिन मॉजी ! इन्द्र पदवी भी नाशवंत है उससे आगे हम उसे अक्षरधाम दे तो ?'

तो तो बहुत अच्छा।'

जहाँ बुढ़िया ऐसा बोली वहाँ तो महाराज ने प्राण खींच लिये और तब बुढ़िया रोने लगी। जानती थी कि अक्षरधाम में पंचाला से भी अधिक सुख है फिर भी छोड़ नहीं सकती थी। विचार को न पहुॅचे हो तब ऐसा होता है। स्त्री इत्यादि पंचविषय में से आसक्ति न टली हो तो ब्रह्मानंद का सुख भी गौण लगता है।

सन 1974 की विदेश यात्रा में स्वामीश्री तथा सभी संत, भक्त साऊधम्प्टन में ब्यूली बीच पर भाद्रा की अमावस्या का समैया करने गये थे। बीच के मालिक लोर्ड मोन्टेग्यु ने सारी व्यवस्था कर दी थी। वह अति अति अति धनाढ़य व्यक्ति। उसके महल में दुनिया भर की अच्छी से अच्छी कार थी। छत सोने से मढ़ी हुई थी। उसका भक्तिभाव देखकर स्वामी प्रसन्न हुए और आशीर्वाद देते हुए कहा : 'आपने हमे सहकार दिया तो हम आशीर्वाद देते है कि महाराज आपको अक्षरधाम देंगे।'

संतो ने उसका भाषांतर करके उन्हें अंग्रेजी में समझाया। तब वह बोले : 'वह रहने दीजिये। स्वामी से कहिये कि मेरी पत्नी भाग गई है वह वापस आ जाय।'

भगवान के धाम के बदले केवी क्षुल्लक मंगनी ! स्वामी ने तो उस प्रकार आशीर्वाद दिये। स्वामी के आशीर्वाद से उसकी पत्नी वापस भी आ गई, उसे लड़का भी हुआ था, परंतु कैसी करूणता कि अक्षरधाम के सुख को ठोकर मार दी थी और इस लोक के पंचविषय में ही रचेपचे रहे।

गृहस्थमात्र को पता होता है कि संसार में मुट्ठी भर कर खाने जैसा कुछ भी नहीं है। ठोकर मारकर मुँह हँसता रखना पड़ता है। फिर भी लड़का साधु बनने तैयार होता है तो मना कर देते है और उसका विवाह करके ही मानते है। कुछ ही पिता कह सकते है कि –

'घर में उलझन अधिक संसार दुःख का साल;

मैं तो घर से निकला, तुम भी चलो साथ।'

8. ऐसी कौन–सी वस्तु है इस धरती पर, जिसमें लोभे जो लोभे प्रभु में –

परंतु इस प्रकार पंचविषय में से वृत्ति तोड़ने को भगवान के सुख में दृष्टि पहुँचानी पड़ती है। श्रीजी महाराज कहते है 'स्वाभाविक रूप से पंचविषय का ग्रहण करते है तब उसमें तो कुछ नहीं होता है, लेकिन यदि उस विषय में कुछ अर्थपूर्ण लगता है तब तुरंत उस भगवान के सुख में दृष्टि दौड़ जाती है और मन अत्यंत उदास हो जाता है..... और इस विचार के बगैर तो यदि रमणीय पंचिविषय में वृत्ति लगी हो उसे अत्यंत बलपूर्वक उखाड़ता है तब बड़ी मुश्किल से उखड़ती है और यदि इस विचार को प्राप्त हुआ हो तो वह वृत्ति को खींचने में लेशमात्र भी प्रयास कम नही होता है। आसानी से विषय की तुच्छता दिख जाती है। और यह जो वार्ता है, यह जिसे अधिक बुद्धि होती है और अधिक सुख के लोभ की इच्छा करे उसे समझ आती है। जिस प्रकार कोड़ी से पैसे का अधिक महत्व है और उससे अधिक रूपये का महत्व है। और उससे अधिक सोना मोहर का महत्व है। और उससे अधिक चिंतामणि का अधिक महत्व है, उसी प्रकार जहाँ–जहाँ पंचविषय का सुख है उसके अधिक भगवान के धाम भगवान का सुख अधिक है, और जो बुद्धिवाला होता है और जिसकी दृष्टि दौड़ती है उसके हृदय में यह विचार ठहरता है।'

श्रीजी महाराज कहते है कि भगवान के अपार सुख का विचार हृदय में दृढ़ करे तो पंचविषय त्यागने में देर नहीं लगती है। जो ऐसे विचारों तक पहुँचा है उसे पंचविषयों का त्याग करने में देर नहीं लगती है।

प्रह्लाद को भगवान ने कहा कि 'अब तुम इस त्रिलोकी के राज्य का उपभोग करो। तुम्हारे पिता को मैने मार डाला है।

तब प्रह्लाद ने कहा : 'त्रिलोकी के राज्य के लिये मैंने आपकी भक्ति नहीं की है। वह तो यदि मैं आपका भजन नहीं करता तो भी मेरे पिताजी मुझे देने वाले थे। मुझे ऐश्वर्य नहीं चाहिए, नहीं चाहिये, लेकिन आप प्रसन्न हुए हो तो मेरे इन्द्रियो के गण से मेरी रक्षा करें। '

हनुमान जी ने सीताजी द्वारा दिया हुआ नवलखा हार भी गुमा दिया था। 'बुद्धिमतां वरिष्ठ :' की दृष्टि पलट गई थी। कठोपनिषद में नचिकेता की बात आती है। उसने यमराज के पास मृत्युजयी विद्या मांगी तब यमराज कहते है :

शतायुष : पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्ति हिरण्यमश्वान्।

भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि।।

एततुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्ववितं चिर जीविकां च।

महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि।।

ये येकामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामॉश्च्छन्दतः प्रार्थयस्व।

इमा रामाः सरथा : सतूर्या नहीं दृशा लम्भनीया मनुष्यै :।।

आभिमदप्रत्ताभि : परिचारयत्स्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षी :।

(कठोपनिषद – 1/1/23–25)

– 'हे नचिकेता ! तुम सौ–सौ वर्ष की आयुष्यवाले पुत्र–पौत्र मांगो। अनेक पशु, हाथी, घोड़े और सूवर्ण मांगो। पृथ्वी पर विशाल राज्य मांगो। इच्छित आयुष्य मांगो। इसके अलावा भी यदि तुम्हारे दिल में हो तो वह भी मांगो। मनुष्यों को दुर्लभ ऐसी अप्सराएं, रथ, वाजिंत्रादि सर्व साज सहित मांग लो, लेकिन मरणविषयक तुम कुछ न पूछो।'

अच्छे–अच्छे ऋषिमुनियों की पालथी छूट जाये ऐसे इन प्रलोभन की परंपरा को एक झटके में तोड़ते हुए नचिकेता कहता है :

अजीर्यताना मुपेत्य जीर्यन्मार्थ : क्वध : स्थः प्रजानन्।

अभिध्यायन्वर्ण रतिप्रमोदानतिदीर्घ जीविते को रमेत।। (1/1/28)

– अक्षर है, अमर है उसके सुख को छोड़कर नाशवंत इस पृथ्वी के सुख को कौन चाहेगा ?

नचिकेता की दृष्टि परमात्मा के अनंत, अजर सुख में पड़ गई थी। तो वह पंचविषय को लात मार सका।

बृहदारम्यक उपनिषद की एक कथा है। यज्ञवल्कय अपनी दो पत्नीयो – मैत्रेयी और कात्यायिनी को अपनी मिलकियत बाँट कर वानप्रस्थ जाने का सोचता है। उस समय कात्यायनि तो मिलकियत मिलने से प्रसन्न हो जाती है, लेकिन मैत्रेयी पूछती है : 'सा होवाच मैत्रेयी यन्नु म इयं भगो : सर्वापृथवी वित्तेन पूर्णास्यात्कथं तेनामृता स्यामितिः ..... (4/5/3)

– क्या यह पृथ्वी घन से भरी प्राप्त हो जाय तो उससे अमरत्व न मिले ? (अर्थात इस प्रकार संपत्ति का त्याग करके आप वन में जाने के लिये तैयार हुए है, तो क्या घन से अमरत्व नहीं प्राप्त होता है ?)

तब याज्ञपल्कय कहते है : नेति होवाच याज्ञवल्यों यथैवोपकनवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यादमृत्वस्य तु नाऽऽशाऽस्ति वितेनेति।' (4/5/3)

– नहीं, तो धन से एक साधन –संपन्न व्यक्ति जीता है उस प्रकार जी सकते है, लेकिन अमरत्व–परमपद संपत्ति से नहीं मिलता है।

तब मैत्रेयी कहती है :

'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्।' (4/5/4)

– तो फिर मुझे भी इस धन–दौलत की क्या आवश्यकता है ? जिससे अमरत्व नहीं मिले उसका मै क्या करूं ? इतना कहकर वह भी याज्ञवल्कय के साथ चल पड़ी।

इस प्रकार, जिसका विचार भगवान के सुख में पहुँच जाता है उसे पंचविषय का त्याग आसानी से हो जाता है।

तभी श्रीजी महाराज कहते है : 'भगवान संबंधी सुख को कौन प्राप्त करता है ? तो वह कहते है कि, जिस प्रकार मछली के लिये जल जीवनरूप है। उस जल का योग जब तक रहता है तब तक जल में मछली चलती है, हिलती है, क्रीडा करती है और जल का वियोग होता है तब उसकी चंचलता मिट जाती है और मर जाती है उसी प्रकार जिसे पंचविषय के कारण जीवनपथ जब तक है और उसी के कारण सुख माना है और उसका वियोग होता है तो साधु जैसा हो जाता है, इस तरह जो रहता है उसे भगवान का सुख कभी भी प्राप्त नहीं मिलता है। और पंचविषय के कारण जिसे जीवनपन मिट गया है वही भगवान के सुख का अनुभव करता है। और भोगता है और ऐसे लोगो को ही भगवान के सुख की प्राप्ति होती है। (वच.ग.अं.28)

मछली को जिस प्रकार पानी से बाहर निकालने पर वह तड़पती है, जैसे आवास व्यवस्था अच्छी ना मिले, भोजन में इधर–उधर हो तो उसकी दशा Fish out of water जल में से निकाली मछली जैसी हो जाती है, लुस्त–पुस्त हो जाता है, उसे भगवान का सुख नहिं मिलता है, लेकिन जिसे पंचविषय में से जीवनपना हट गया है वही भगवान के सुख को प्राप्त करता है।

गोपीयो की दशा ऐसी ही हो गई थी। विषय विष सम बन गये थे। कोई चंदन की चर्चा करे तो वह चंदन जहर लगाने जैसा लगता था। कोई गले में पुष्पहार पहनाता तो वह सर्प डाले जैसा लगता।

एक बार अकबर बादशाह को कुंभनदास का संगीत सुनने की इच्छा हुई। इसलिये मानसिंह राजा को बुलाने भेजा। जब वह कुंभनदास की पर्ण कुटी में पहुँचे तब वे आंगण के पानी में प्रतिबिंब देखकर तिलक कर रहे थे। कुंभनदास के पास आईने जैसी सामान्य चीज भी नही थी। यह देखकर मानसिंह तुरंत सोने से मढ़ा हुआ आईना ले आये। और उसे कुंभनदास को दिया। तब कुंभनदास ने कहा : 'अरे ! यह कचरा मै कहाँ संभालू ? ले जाईये वापस।'

मानसिंह तो यह सुनकर स्तब्ध रह गये। उसने अकबर की विनंती सुनाई। बादशाह का अनुरोध था इसलिये कुंभनदास गए परंतु वापस आने पर जब लोगो ने बादशाह के दरबार की बातें बताने को कहा। तब उन्होंने कहा :

'आवत जावत पनैया तूटी और भूल गया हरिनाम ;

जाकुं देखे दुःख उपजे, ताकु करनी पड़ी सलाम,

कुंभनदास बालगिरधर बिन, ये सब झूठो काम।'

इस प्रकार, जिसे भगवान के सुख की समझ आ जाती है, उसे राजमहल भी जेल लगने लगता है। पंचविषय से उसका मन हट जाता है।

सद्गुरू आनंदानंद स्वामी दीक्षा लेने के पूर्व अयोध्या के एक बड़े मठ के महंत थे, परंतु द्वारिका की यात्रा करने निकले तब उन्हें श्रीजी महाराज के दर्शन हुए और 'देखते ही आकृष्ट हो गये। श्रीजी महाराज के पास परमहंस दीक्षा ग्रहण कर ली उस समय उन्होने एक लाख रूपये की मिलकत को ठोकर मारी थी।

सद्गुरू नित्यानंद स्वामी ऊँझा मे श्रीजी महाराज की दंत पंक्ति देखकर साधु हो गये थे। उन्होंने भी 80,000/– रूपये की पुश्तेनी मिलकत छोड़कर दीक्षा ली थी।

सद्गुरू ब्रह्मानंद स्वामी साधु हुए तब उनकी संपत्ति की यादी कुछ इस प्रकार थी :

– रू 11,000/– नगद

– रू. 20,000/– की जामशाही तथा रू. 90,000/– की दीवानशाही कोरी।

– 101 जामशाही सोना महोर

– सोने के जड़ाव जेवर, हीरे

– मोती, माणेक, सोने के त्रोड़, एड़ी, कड़े, वेढ, अंगूठी, शिरपेच, हमेल, आशा लकड़ी

– घोड़े, ऊँट के सोने – चाँदी के जेवर

– पोशाक – पहेरामनी के किमती सुनहरे वस्त्र, पाध, शाल –दुशाले।

– 16 घोडे, 7 ऊँट, 4 बैल

– 1 सिगराम, 1 बैल गाड़ी

– 50 सेवक

– 25 शिरबंधी अंगरक्षक

– 25 वाहनवाले अंगरक्षक

श्रीजी महाराज के एक खत पर साधु होने निकल पडे 18 परमहंसो में कोई जागीरदार था तो कोई सोने चांदी के प्याले में पानी पीने वाले थे।

लाधा ठक्कर ने एक लाख रूपये की उधरानी छोड़ कर महाराज के पास कारभारी की सेवा में आ गये थे।

कुशलकुंवर बा की परब्रह्म के सुख में नजर पड़ गई तो 500 गाँव के रजवाड़े में वृत्ति नहीं रही। देह छोड़कर अक्षरधाम पहुँच गये।

वागड़ के खोड़भा चुड़ासमाँ और ब्रजकुँवर बा की कन्या झमकु बा उदयपुर की महारानी थी। लेकिन वे राजवैभव छोड़ कर, प्रभु को रिझाने के लिये गढ़डा आकर बस गई।

इस प्रकार, जिसे–जिसे भगवान में असीम सुख है वह विचार हृदय मैं रहता है, फिर विषयसुख खारा जहर बन जाते है।

सारंगपुर में फूलदोलोत्सव के बाद श्रीजी महाराज ने फगवा मागने कहा तब उत्तर गुजरात की जतन फोई इत्यादि बाई – भक्तों ने मांगा कि 'कभी मत दीजियेगा संसारी सुख ....' सांसारिक सुख की अभीप्सा ही इन सभी को टल गई थी।

पश्चिम के जादवजी विप्र पर प्रसन्न होकर महाराज ने कहा : 'भूदेव ! कुछ मांगिये।'

तब उन्होने कहा : 'आपकी मूर्ति और कृपा अखंड रहे ऐसा कर दीजिये।'

महाराज ने कहा : 'आप गरीब हो तो दरिद्रता जाय ऐसा कुछ नहीं मांगना है ?

तब जादवजी ने कहा : 'महाराज ! आप तो गरीब नवाज हो इसलिये मेरा ध्यान रखने ही वाले हो। अतः वह नहीं मागना है।'

भगतजी महारज को गुणातीतानंद स्वामी ने प्रसन्न होकर कहा :

'प्रागजी ! तुम बम्बई जाओं तुम्हें 60,000/– रूपये मिलेंगे।'

तब भगत जी महाराज ने कहा : 'स्वामी ! मैने 13 साल गोपालानंद स्वामी का समागम किया और 9 साल से आपके पास हूँ, लेकिन किसी भी दिन धन–स्त्री में सुख हैं ऐसा नहीं सुना है। इसलिये आप प्रसन्न हुए हो तो आपका घर बताइये और मेरी आत्मा को सत्संगी करीये।'

वह जूनागढ़ स्वामी का सत्संग करने जाते थे। तो सुविधा से एकदम निरपेक्ष होकर – आवास व्यवस्था, वस्त्र, भोजन इत्यादि किसी की भी झंझट में नहीं पड़ते थे, केवल स्वामी का लाभ लेने की ही धुन रहती थी।

ऐसा ही भक्तराज 'पर्वतभाई थे। दालिये खाकर भी सप्ताह भर उन्होंने सत्संग किया था। किसी भी लौकिक सुख–सुविधा की कामना ही नहीं थी।

नापाड के मंगलभाई, कोयली के मंगलभाई, सारंग के मनुभाई इत्यादि भी ऐसे ही भक्त हुए है, जो मंदिर आते तब केवल सत्पुरूष का लाभ लेने की ही धुन रहती। खाना, पीना, ओढ़ना, बिछाना, रहना इत्यादि में जहाँ–तहाँ, जैसे – तैसे, जैसा–तैसा चला लेते। उनकी दृष्टि भगवान में और संत के महासुख में पड़ गई थी, इसलिये यह छोटी–छोटी कटकट नज़र में ही नहीं आती थी।

छोटे अक्षर स्वामी को शास्त्रीजी महाराज ने कहा कि 'आप वड़ताल रहिये तो मुझे लाख गुना प्रसन्नता होगी। लेकिन यदि बोचासन आते है तो करोड़ गुना प्रसन्नता होगी। 'अक्षर स्वामी को

वड़ताल में सर्व प्रकार की जाहोजलाली थी और दूसरी तरफ बोचासन में तो काटों का बिस्तर था, फिर भी उन्होंने वड़ताल छोड़ दिया।

इस प्रकार, जिसे–जिसे पता लगा है कि भगवान में अधिक सुख है, उसने–उसने विषयों को लात मार कर ठुकरा दिया है।

श्रीमद राजचंद्र कहते है : कर विचार तो पाए तु। – यदि विचार जीवन में स्थिर रहता है। तो कुछ प्राप्ति जीवन में होती है। छादोग्य उपनिषद के सातवे खंड में कहा है :

'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखम्।'

– भूमा अर्थात सर्व व्यापक परमात्मा में ही सुख है, परंतु जो अपूर्ण है उन विषयों में सुख नहीं है।

ब्राहमीस्थिति जीवन में सिद्ध न हो किन्तु यह विचार दृढ़ रहे तो भी विचार का आनंद प्राप्त हो सकता है।

जैसे 'कल जलेबी बनने वाली है, यह विचार आने पर भी जलेबी..... जलेबी..... जलेबी..... ऐसा होता रहता है और मुंह में पानी आता है। सिनेमा देखने जाना है उसके विचार में ही कितने लोग मस्त रहते है। अमेरिका जाने का इमीग्रेशन वीजा मिला हो तब भी वहॉ भारत में बैठे–बैठे आनंद आता है। कोई गरीब घरकी कन्या का विवाह बड़े रजवाड़े में हो तो कन्या अभी अपनी छोटी सी झोपड़ी में कामकाज कर रही हो लेकिन महल के विचार से आनंद में रहती है। वैसे भले अभी परब्रह्म के सुख का सम्यक् अनुभव न हुआ हो, लेकिन 'वह प्राप्त होने वाला है' यह विचार भी हमें आनंद में रख सकता है। और जिसे ऐसे विचार का आनंद है उसे ब्राह्मीस्थिति का आनंद दूर नही है। निष्कुणानंद स्वामी को ज्ञात हो गया कि सुख का स्त्रोत श्रीजी महाराज हमारे हाथ में आ गये है, तब भी कितना आनंद था। वे गाते है :

आज आनंद मेरे उर में, मिली मुझे बहुत महंगी बात रे,
कोटि कष्ट करे हरि नव मिले, वह तो मिले मुझे साक्षात रे।
सुख सुख सुख वहॉ सुख अधिक,
वह तो मुख से कहते न कहपाएँ रे.....,
निष्कुणानंद उस आनंद में, मलक–मलक गुन गाय रे।'

भादरा के डोसाभाई सूखी रोटी और खट्टी छाछ खा रहे थे। किसी ने कहा : 'डोसाभाई ये क्या लूखा लूखा खा रहे है ?'

तब उन्होंने कहा : ' लूखा खाय वह हराम खाय। लूखा तो आप खाते है। हम तो भगवान का स्मरण करके भोजन करते है। 'परब्रह्म के आनंद की अलमस्ती उन्हें थी।

वैज्ञानिक अपने संशोधन की लगन में जैसे विवाह करना भूल जाते है, उसी तरह परमात्मा की लगन में संत भक्त इस संसार के दुःख भूल जाते है। प्रखर पंडित वाचस्पति मिश्र को ग्रंथरचना के अलावा कोई आनंद नहीं था। अपनी विवाहिता को भी भूल गये थे। उसी प्रकार जिसे परब्रह्म के सुख के विचार में दृष्टि पड़ जाती है। उसे भी बाद में आनंद–आनंद रहा करता हैं।

निष्कुणानंद स्वामी उस आनंद की अलमस्ताई में ही गा रहे है।

' कंगालीपन तो रही नही, कोई मत कहना कंगाल,
निर्धन तो हम है नहीं, महा मिला है माल।
भाग्य जागे रे आज जानने.....,
'नवनिधि की रे नहीं मुझे वांछना रे,
सिद्धि की तरफ अब क्यों देखे,
सर्व के कारण रे मिले चिंतामणि रे,
अब जे–जे विचारे ते होय .....'
'कंगालीपन रे तो बहन मेरा काटा रे,
होय–होय सुखी सभागी शेठ.....
'अमृत के सिंधु उमड़े रे,
रंग में रंगने की है लहर,
पुरूषोत्तम प्रगटे रे.....'

सौ–सौ पैबंदवाली भगवी कंथा ओढ़कर, धूल पिटाई (मार) और गाली खाते – खाते, तपते हुए ताप में बैठकर लिखी गई उपरोक्त पद पंक्तियों में किसका आनंद छलक रहा है। परब्रम्ह का ही तो !! अफ्रीका के मगनभाई नींद में भी उछलते, सुख की हिलोरे लेते।

वचनामृत ग.प्र. 78 में श्रीजी महाराज कहते है : 'जो भक्त यह समझता है कि 'यह भगवान और यह संत वह सभी वैकुंठ, गोलोक और ब्रह्मपुर उसके निवासी है। उस संत को परमेश्वर जहाँ विराजमान है वही वह सभी धाम है और उस संत के साथ मेरा निवास हुआ है। वह मेरा अति बड़ भाग्य है। 'इस प्रकार समझे तो आठो पहर आश्चर्य समान रहे और आठों पहर आनंद के समुद्र में झूलता रहे।''

समुद्र में तो बड़ी–बड़ी लहरें आती है, लेकिन परब्रह्म का सुखसागर तो 'समंदर धीरे–धीरे लहराय' इस प्रकार अखंड छलकता ही रहता है। उसमें जो डूबकी मारे उसके आनंद की सीमा नहीं रहती है।

उस स्थिति के लिये श्रीजी महाराज कहते है :

'' और यह विचार जिसके हृदय में दृढ़ हुआ हो और वह वन मैं बैठा हो तो स्वयं को ऐसा जाने कि, मैं अनंत मानव तथा राज्य समृद्धि में घिरा हूँ। ' ऐसा समझे, लेकिन दुःखीया ना माने। और इन्द्र के लोक में हो तो महसूस करे कि, 'वन में बैठा हूँ। 'लेकिन वह इन्द्रलोक के सुख से सुखीया न माने, उस सुख को तुच्छ माने।'' (वच.पं.1)

मुक्तानंद स्वामी भी कहते है :

'जी रे त्रिभुवन की संपत्ति मिले, तब भी ना तजे रे अर्धपल हरिध्यान,

ब्रह्मरूप हो हरि को भजे, ऐसे संत को रे कीच–कनक समान।'

जिसे परब्रह्म के सुख में दृढ़ता हो गई है, उसे कोई लौकिक विषय मोह नहीं सकते है।

गुणातीतानंद स्वामी विचरण करते–करते खंभात पधारे। हरिभक्तो को उत्साह था कि स्वामी को चांदी की बग्धी में बिठा कर भव्य नगरयात्रा निकालेंगे। इसलिये नवाब से मिलकर उनकी बग्धी भी लाने की बात पक्की हो गई थी, परंतु स्वामी को जब इस बात का पता लगा तब उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया। नवाब को स्वामी की वैराग्यवृत्ति देख कर बहुत सद्भाव हुआ। स्वामी की पधरामनी उन्होंने अपने भवन में करवाई।

सन 1977 में प्रमुख स्वामी महाराज की नगर यात्रा का आयोजन लंडन में हुआ था। उसके लिये जो बग्धी लाये थे वह सामान्य थी। स्वामी के सामने यह बात निकली, तो उन्होंने कहा : 'नही, यह बग्धी तो बेस्ट है।'

सामान्य में श्री अद्भुत आनंद ! गुणातीतानंद स्वामी का वरताल में भरी सभा में अपमान हुआ। स्वामी के ही शब्दो में कहे तो 'अंधाधुध बारीश हो उस तरह शब्द का वार हुआ। 'फिर भी गुणातीतानंद स्वामी का एक भी रोंया नहिं हिला। अपमान के पश्चात बात करने को कहा तो अपमान संबंधी एक शब्द भी लाए बिना श्रीजी महाराज के पुरूषोत्तमपन की ऐसी जोरदार बाते कहीं कि अपमान भूल गये ! जब प्रवित्रानंद स्वामी का थोड़ासा ही अपमान हुआ तो वह उतने में ही बीमार हो गये थे।

गुणातीतानंद स्वामी को श्रीजी महाराज ने 'लीजिये, हमारे जड़भरत' कह कर खुरदुरा कम्बल पहनाया था। वही कम्बल स्वामी ने अंत तक प्रयोग किया।

गुणातीतानंद स्वामी के पास परब्रह्म का आनंद था, जो मान अपमान, सुविधा–असुविधा, सुख–दुःख इत्यादि अनेक विपरीत परिस्थितीयों में भी विचलित नहीं होते है।

गुणातीतानंद स्वामी के एक शिष्य मावाभाई थे। एक बार कोवैया की सीमा में सभा थी, और पास में ही समुद्र बहता था इसलिये सभी वह देखने चले गये थे। एक मावाभाई बैठे रहे। स्वामी ने पूछा : ' मावाभाई ! क्यों आपको नहीं जाना है ? '

मावाभाई ने कहा :' देख लिया, ज्यादा है और खारा है।' रमणीय विषय में से वृत्ति ही हट गई थी।

मांगरोल के गोरधनभाई को नमक और शक्कर दोनो का स्वाद समान हो गया था। बहुत से तो थोड़ा भी फीका–तीखा–तेज–कम हो गया हो तो थाली फेकते; परंतु गोरधनभाई को स्वाद वृत्ति ही समाप्त हो गई थी। जिस प्रकार कोई मधुपत्ती को खाय फिर उसे पेड़ा भी फीका लगता है, वैसे ही भगवान के आनंद में जिसकी वृत्ति लग गई। उसे संसार के स्वाद में से रस चला जाता है।

जीवणा खुमाण को कोई भी कहता ' यह वस्तु अच्छी आई तुम्हारे पास।' तो तुरंत वह मंदिर में जाकर ठाकोरजी को दे देते। बहुत से लोग अच्छा घर पर रख कर खराब वाला भगवान के चरणो में चढ़ाते है।

एक बार श्रीजी महाराज, निगुर्ण स्वामी इत्यादि संत चंपकभाई बेंकर के घर ठाकुरजी को खिलाने पधारे थे। खाना खाते–खाते निर्गुण स्वामी ने स्वाभाविक रूप से कहा : 'शेठ ! कढ़ी बहुत अच्छी बनी है।' शास्त्रीजी महाराज ने यह सुना और तुरंत ही आधी तुंबी पानी पत्तल में डाल दिया !

शास्त्रीजी महाराज मुंबई पधारे थे। उस समय कोई नाश्ते में आलू–पौहा लाया। उस समय तो आलू–पौहा बहुत अच्छी वानगी मानी जाती थी; लेकिन शास्त्रीजी महाराज ने 'नया पदार्थ नहीं चाहिये' ऐसा कहकर नहीं लिये।

भगतजी महाराज इस परब्रह्म के आनंद के भोगी थे। उनका बहुत मान–अपमान होता फिर भी मन कमजोर नहीं हुआ। सत्संग में उनकी पहचान ही प्रचलित हो गई थी कि, 'जिसका अपमान होता है फिर भी जो आनंद में रहते है वो भगत जी।'

योगीजी महाराज तो मानो परब्रह्म के आनंद का धनीभूत स्वरूप ही थे। विख्यात लोक सेवक रविशंकर महाराज कहते थे कि 'योगी जी महाराज के पास बैठते है तो ऐसा लगता है कि उन्होंने आध्यात्मिक आनंद बहुत भोगा है।'

राजकोट में एक मुमुक्षु ने केवल योगी जी महाराज के फोटो के ही दर्शन किए और बोल उठे कि 'अहो ! क्या अलमस्ताई है ! आनंद है !'

कोई भी परिस्थिति योगी जी महाराज के आनंद में बाधा डालने में समर्थ नहीं थी। इतना ही नहीं, वह तो असुविधाजन परिस्थिति में अधिक आनंद प्राप्त करते थे।

एक बार योगी जी महाराज के सिर पर बांधनेवाली पाघ रमणभाई और दिनुभाई नामक दो युवको ने धोने के लिये निकाली। उसे खोलकर देखा तो 25–30 जितने छोटे–बड़े छेद कपड़े में हो गए थे। कपड़ा पूरी तरह से जर्जर हो गया था ! इसलिये दोनों ने योगी जी महाराज के समीप जाकर कहा : 'स्वामी ! यह कपड़ा पूरी तरह फट गया है। तो हम नया ले आए।'

योगीजी महाराज ने मना किया और कहा : 'आप बदलने का कह रहे है लेकिन पाघ कहां मना कर रही है ?' सभी योगीजी महाराज की इच्छा समझ गए और नया कपड़ा लाने की बात मुलतवी रखी।

योगीजी महाराज तो गातरिया फट जाए तो भी सिलकर चलाते। पेन भी सबसे पुरानी रखते। लोग बहुत बदलने को कहते, लेकिन वे मना ही करते, बोरे पर ही सो जाते थे। उन्हें नई श्रेष्ठ वस्तुओं का कोई मोह नहीं था। ऐसे ही पुरूष को ब्रह्मानंद प्राप्त होते है – ऐसा बताते हुए उपनिषद कहते है : 'श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।' (तै.ऊ.–अनुवाक्–8), जो श्रोत्रिय और कामना रहित है उसे इस ब्रह्मांड के सिवाय प्रकृतिपुरूष के सुख में भी आनंद नहीं आता है।

एक बार उनके सखा भगवानदास शेठ योगीजी महाराज को (ओढ़ाने) पहनाने बारीक, नई धोती लेकर आए, तो योगी जी महाराज उदास हो गये और वह लिया ही नहीं।

हम तो किसी के पास अच्छी, नई वस्तु देखंकर पूछ लेते है, 'यह अच्छे जूते–कपड़े आप कहाँ से लाए ?' हमारा समय ऐसी ही व्यर्थ बातों में जाता है।

गोंडल में 'योगी स्मृति मंदिर' में योगीजी महाराज के प्रसादीभूत पूजा के वस्त्र रखे है तथा साथ में दूसरे वस्त्र भी रखे है। जिनका वे उपयोग करते थे। परंतु वे तो मोटे और खुरदुरे लगते है।

बिमारी में योगीजी महाराज को पलंग पर सोना पड़ा तब उनके उद्‌गार थे : 'मेरा प्रभाव चला गया।'

उनकी हाथी पर सवारी निकली तब उनके मुँह से शब्द निकल गए : मणिभाई ने हाथी पर बिठाकर हमारी इज्जत ली।' उनकी क्या खुमारी होगी ! हृदय कितने आनंद में हिलोरे मारता होगा कि ऐसी कद्र और सम्मान भी उन्हें प्रभावित नही कर पाते होंगे ?'

योगीजी महाराज को विज्ञानदास मारते तब भी वे नहीं भागते थे। किसी ने योगीजी महाराज से इस संबंध में पूछा कि 'आप भाग क्यों नही जाते और मार खाते रहते है ?' तब योगीजी महाराज ने कहा था : 'वह प्रसन्न होते है ना !'

धोधावदर में उनका उतारा **गौशाला** साफ करके वहाँ रखा गया था। मच्छर, मकड़ी के असहय त्राास के बीच भी यहाँ वे आनंद से ललकाररहे थे : 'अनुभवी आनंद में ब्रह्मरस के भोगी रे..... ' उस समय यह कीर्तन मूर्तिमान योगीजी महाराज द्वारा सभी को दिखाई दे रहा था।

गौशाला हो कि महल–उनका दिन सभी जगह समान था। लीबड़ी हो कि लंडन, सर्वत्र उन्हें बढता ही बढ़ता आनंद था।

एक बार प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और सामाजिक कार्यकर्ता मनु सूबेदार के घर ठाकुरजी को भोजन कराने पधारे थे। मनु सूबेदार ने सुंदर भोजन तैयार करवाया। योगी जी महाराज भोजन करने बैठे तब श्रीजी महाराज की आज्ञानुसार पत्तल में सभी वानगी मिलाने लगे। मनु सूबेदार ने यह देखा और नहीं..... नहीं करे उसके पहले ही योगीजी महाराज ने पानी की अंजली भी पत्तल में डाल दी। यह देख कर मनु सूबेदार ने कहाः 'स्वामी ! आपने यह सब कुछ इकट्ठा कर और फिर ऊपर से पानी डाला, तो इसमें आपको स्वाद क्या आयेगा ?'

तब योगी जी महाराज केफ से बोले : 'इसमें से हमें मूर्ति का स्वाद आता है।

प्रेमानंद स्वामी ने गाया है :

'प्रिय तुम्हारी मूर्ति अति रसरूप रसिक निहारकर (देखकर) जिये रे लोल :,

प्रिय है रस के चाखनहार छाछ वे नही पिये रे लोल।'

योगीजी महाराज के जीवन में यह पंक्तियाँ अक्षरश': सत्य होती दिखी है। परब्रह्म के आनंद में गुलतान उन्हें कुछ भी देखने की इच्छा ही समाप्त हो गई थी। समाप्त करने की क्या बात ! ऐसी कोई ऐहिक ऐषणा उनमें थी ही नहीं।

सन 1970 में योगीजी महाराज लंडन पधारे थे। यहाँ अरविंदभाई को लगा कि संत आये है तो उन्हें लंडन शहर के दर्शनीय स्थान बताऊ। योगीजी महारज को भी साथ में ले गए। परंतु थोड़ी दूर ही गये थे कि तभी योगीजी महाराज ने कहा, ''यह तो पत्थर पर पत्थर चढ़ाए है। देखने लायक क्या है ?' ऐसा कह कर आवास में वापस आ गए। गोंडल में योगीजी महाराज जिस प्रकार रहते थे। एक बार उसका वर्णन करते हुए वह कह रहे थे : 'हम 3:30 बजे उठते है, ठंडे पानी से नहाते, रोटी बनाते, बर्तन माँझते, पाठ करने जाते – उसमें जो आनंद आता.....'

यह सुन रहे हर्षदभाई ने बीच में ही योगीजी महाराज को पूछाः 'बापा ! आपने यह जो कुछ भी वर्णन किया उसमें से एक भी क्रिया ऐसी नहीं है कि जिसमें आनंद आए। आपको उसमें क्या आनंद आता था ?'

'गुरू ! मूर्ति का आनंद आता है। 'योगीजी महाराज हँसते–हँसते बोले।

यह उनकी उच्च आध्यात्मिक शक्ति थी। ब्रह्मानंद के बगैर एक भी क्षण उनके जीवन में व्यतीत नहीं हुई थी। कितनी ही विकट परिस्थिति क्यू न हो ? वे कहते थे ?' 'अपने ब्रह्म स्वरूपपन का आनंद एक पल भी फीका नहीं पड़ने देना चाहिए। 'स्वयं के पास कुछ भी नहीं रहने पर भी चक्रवर्ती सम्राटो के वैभव भी फीके पड़ जाय वैसा सुख योगीजी महाराज चौबीस घंटे भोगते थे।

भृर्तहरि ने कहा है :

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्व दुकुलै :

सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः।

सहि भवति द्ररिद्रो यस्य तृष्णा विशाला

मनसि च परितुष्टे कोडर्थवान् को दरिद्र :।।

–हम वल्कल से संतुष्ट है और आप रेशमी वस्त्रों से अपना सुख आम समान है। वही वास्तव में दरिद्र है जिसकी तृष्णा अधिक है। मन से यदि संतुष्ट होंगे तो कौन धनवान है और कौन गरीब है ?

परब्रह्म के सुख से योगीजी महाराज मन से इतने संतुष्ट थे कि कुबेर भी उनके पास कंगाल लगे। उपनिषद में कहा है : 'रसं ह्येवं लब्धवा आनन्दी भवति।' – उस परमात्मा के रस को पाकर जीव आनंदमय बन जाता है। योगीजी महाराज वो परब्रह्म के आनंद में गुलतान थे जिससे उनकी यह ब्राहमीस्थिति थी।

आज प्रमुखस्वामी महाराज के जीवन में भी यह स्थिति देखने मिलती है। स्त्री और धन इन दो के आधार पर संसार चलता है ऐसा डॉ. फ्रोइड और कार्लमार्क्स का मंतव्य पहले हमने पढ़ा है संसार मतलब सिर्फ यह दो ही। उसका त्याग करें वह त्यागी। प्रमुख स्वामी महाराज के पास इन दो में से कुछ भी नहीं है फिर भी चौबीस घंटे वह आनंद में रहते है। तो वह आनंद कौन–सा ? परमात्मा का।

लौकिक पंचविषय के सुख से अधिक अक्षरधाम का सुख है। उसकी प्रतीति और पूर्ति मतलब प्रमुखस्वामी महाराज। क्योंकि, उनके जीवन मे पंचविषय का त्याग है। फिर भी जो पंचविषय पूरे जोश में भोगते हैं उससे भी अधिक और स्थिर आनंद भोगते है। अतः निश्चित रूप से समझ में आता है कि भगवान में अधिक सुख है और इतना ही नहिं, साथ में हम भी व सुख भोग सकते है ऐसी प्रतीति भी होती है। एक व्यक्ति चंद्र पर जा सकता है तो दूसरा भी जा सकता है। उसी तरह प्रमुख स्वामी महाराज की स्थिति देखकर हमें भी विश्वास होता है कि हम भी इस कक्षा तक पहुँच सकते है ऐसा है।

प्रमुख स्वामी महाराज को परमात्मा में सुख का आधिक्य लगता है। इसलिये पंचिविषय में हमेशा तुच्छबुद्धि रहती है। अच्छे विषय प्राप्त हो तो वह अत्याधिक खुश नहीं होते ओर दुःख मिले तो वह उकुलाते भी नहीं है।

एक बार एक हरिभक्त प्रमुखस्वामी महाराज के लिये चांदी की जीभली (Tung Cleaner) लाए। सुबह प्रमुख स्वामी महाराज को वह दी तो स्वामी ने उसे हटा दिया, उपयोग में ही नहीं लिया।

उनकी धोती (गातरिया) में छेद हो जाता तो भी वे उस वस्त्र नहीं बदलते थे। रफू करके चलाते थे।

एक बार माला की लटकन थोडी अधिक लंबी हो गयी, तो तुरंत कटवा दिया। अपने चश्मे की फ्रेम भी वे खुद पसंद नहीं करते थे। सेवको को कह देते थे कि 'आप स्वयं ही पसंद कर लिजीए। '

एक बार रोजीद गॉव में बैलगाड़ी पर ही सोना पड़ा फिर भी स्वामी के मुख पर आनंद था, ऐसा आनंद जैसा वातानुकूलित कक्ष में सोने पर आता है।

सन 1974 मे नैरोबी से भारत वापस आना पड़ा सरकार ने एयरपोर्ट पर भी उतरने की परवानगी नहीं दी। इस घटना के पीछे कोई गैरसमझ कारणभूत थी, परंतु वे इस अपमान से परे थे। उनकी मुखरेखा बिल्कुल भी नहीं बदली। थोड़े दिनों पश्चात् घामघूम से नैरोबी पधारने का हुआ और राष्ट्रपति जोमों केन्याटा ने मोम्बासा में सम्मान किया। यह सम्मान भी स्वामीजी का मुखभाव बदल नहीं सके थे। जैसे अपमान में स्वामीश्री स्थिर और स्वस्थ थे, वैसे ही स्थिर और स्वस्थ सम्मान में भी थे।

एक बार किसी ने उनसे पूछा : ' आपके जीवन में कभी भी आपको अफसोस हुआ है ?

स्वामीश्री ने कहा था : 'अफसोस किस बात का ?'

मुंबई में एक पत्रकार ने स्वामीश्री से पूछा : 'आपके जीवन का सबसे आनंददायी प्रसंग कौनसा ?'

स्वामी श्री ने कहा : 'सभी प्रसंग हमारे आनंद के ही है।'

उनकी इस हर्ष–शोकरहित स्थिति का रहस्य उनकी समझ है। वह भगवान के आनंद में स्थिर हुए है, जिससे कोई भी परिस्थिति उन्हें अस्थिर नहीं बना सकती है।

हमें भी सुखी होने के लिये यह समझदारी रखनी है। सुख कही और नहीं ढूंढना है। निष्कुणानंद स्वामी सत्य ही कहते है :

'सखी ! समझदारी में बहुत सुख है .....'

नोबल पुरस्कार विजेता मोरीस मेटरलीन्क ने 'ब्ल्यू बर्ड' नामक पुस्तक लिखी है। एक बालक ब्लू बर्ड ढूंढने सभी जगह घूमता है, बाद में पता लगता है कि वो तो उसके घर में ही है। इस प्रकार की कोई कथा उस पुस्तक में लिखी गई है। हमारी भी स्थिति उस पक्षी को ढूंढते हुए बालक से कोई अलग नहीं है। हम सभी कस्तूरी मृग जैसे है। कस्तूरीमृग की नाभि में ही सुगंध बसती है। फिर भी वह जंगल में भटकता रहता है।

' मृगनाभि कस्तूरी बसे और ढूंढत रहे वनमाय'.... उसी प्रकार सुख के स्त्रोत परमात्मा हमारे भीतर ही है, परंतु हम बाहर फांके मारते रहते है।

छांदोग्य उपनिषद में कहा जाता है : तद्यथा हिरण्यनिधि निहितम क्षेत्रज्ञा उपर्युपरि सश्चरन्तो न विन्देयु :।' (8/3/2)

–अपने खेत में गड़े हुए खजाने को जाने बगैर किसान ऊपर–ऊपर काली मजदूरी करता रहता है, उसी तरह हमारे अंदर रहनेवाले सुखसागर भगवान को छोड़ कर हम बाहर ढूंढते रहते है।

योगी जी महाराज एक दृष्टांत देते थे :

एक बहन के घर उसका भाई मेहमान बन कर गया। बहुत समय बाद भाई आया था इसलिये बहन को लगा कि 'भाई को शीरा बनाकर खिलाऊ 'इसलिये वह बजार में गुड़ लेने गई। व्यापारी को गुड़ देने के लिये कहा, तब उसने पूछाः 'आपको शक्कर जैसा मीठा गुड़ दूँ ? या फिर .....' बाई पूछती है : 'क्या गुड़ से शक्कर ज्यादा मीठी होती है ? तब तो फिर मुझे शक्कर ही दीजिये .....'

तब व्यापारी बोला : 'आपको शक्कर जैसी मीठी मिश्री दूँ या फिर.....'

बाई ने कहा : 'यदि शक्कर से मिश्री में अधिक मीठास हो तो फिर मुझे मिश्री दीजिये।'

व्यापारी ने पूछा : 'आपको पारठ भैस के दूध जैसी मीठी मिश्री दूँ ? या फिर.....'

तब बाई ने पूछा : 'क्या पारठ भैंस का दूध इतना अधिक मीठा होता है ? तब तो मुझे शक्कर, मिश्री, गुड़ कुछ नहीं चाहिये। पारठ भैंस का दूध तो मेरे घर पर ही है।' ऐसा कह कर बाई चल पड़ी।

इस प्रकार सुख का झरना हमारे पास ही बह रहा है इसका ध्यान आये तब बाहर की कोई चीज में से आनंद लूटने का भ्रम मिट जाएगा। बाद में उसे कितने ही विषय भोग प्राप्त हो जाय तभी भी उसमें उसकी वृत्ति आकर्षित नहीं होती है।

गीता में जैसे कहा गया है कि –

'आपूर्यमाणमचल प्रतिष्ठं समुद्रमाप : प्रविशन्ति यद्वत्।

तद्वत् कामायं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नेति न कामकामी।। (2/70)

पूर्ण समुद्र में प्रवेश करता जल उसमें कोई क्षोभ उत्पन्न नहीं कर सकता है, उसी प्रकार भीतर के सुख से जो भरा–भरा है उसे बाहय विषयों का स्पर्श विचलित नहीं कर सकता है।

परंतु सुख में ऐसी अविचल स्थिति प्राप्त करने के लिये क्या करना पड़ता है ? तो उसकी प्राथमिक शर्त समझाते हुए भगवान स्वामिनारायण कहते है : 'इस विचार को रख कर ऐसा सर्वे निश्चय जो रखे, ' अब तो भगवान के धाम में ही सीधे पहुँचना है, लेकिन बीच में किसी भी स्थान पर तुच्छ जो पंचविषय संबंधी सुख उसमें आकर्षित ना हो। 'इस प्रकार सभी दृढ़ निश्चय रखे। और यह तो जो हमारा सिध्दांत है। वह आप सभी से कहा है, अतः दृढ़ता से रखना।– (वच.प.1)

यदि सुख हो और सुखसमुदाय शक्य हो तो वह सुखसंपादन करने का दृढ़ निश्चय वही सुख प्राप्ति की पूर्वशर्त है।

पार्वती ने निश्चय किया था कि –

'कोटि जन्म लग रगड हमारी, वरू शंभु के रहुँ कुंवारी।'

इस प्रकार यह सुख प्राप्त कर ने का दृढ़ संकल्प करे तो उस मार्ग में प्रयाण हो। रूक्मणि की दृढ़ता की बात करते हुए गुणातीतानंद स्वामी ने कहा है :

'वरूं तो भगवान को वरूं, नही तो जीभ काटकर मरू ;

लेकिन दमघोष का पुत्र शिशुपाल उसे न वरूं।'

इस प्रकार हमें भी अक्षरधाम का सुख प्राप्त करने के लिये लक्ष्य तय करना पड़ेगा। परंतु, हमें अक्षरधामरूपी लक्ष्य प्राप्त करना है यह निश्चय करने के बाद उसका सुख लेने के लिये आवरणों को भेदना पड़ता है।

***

बी.ए.पी.एस.स्वामिनारायण संस्था

प्रेरक : परम पूज्य महंतस्वामी महाराज

प्रमुखस्वामी महाराज शताब्दी महोत्सव
1921-2021

1819-2019
वचनामृत
द्विशताब्दी महोत्सव

युवा अधिवेशन 2019

निबंध प्रतियोगीता

पुस्तक : चलो चले हम अक्षरधाम

द्वितीय खंड : एक निशान - अक्षरधाम

(वचनामृत गढडा मध्य प्रकरण - 22 पर चिंतन)

BAPS

सत्संग प्रवृत्ति मध्यस्थ कार्यालय

19. पूर्वभूमिका

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी उनकी बातों में कहते है : 'हमें अक्षरधाम में जाना है ऐसा एक संकल्प रखना चाहिए।' यह अक्षरधामरुपी निशान लेने के लिए शूरवीर होना होगा। मोह के सैन्य का नाश करने के लिए निर्मोही सत्पुरूष का साथ चाहिए।

प्रस्तुत वचनामृत का यह प्रथम भाग है।

अक्षरपुरूषोत्तम की मूर्तियाँ बिठाकर अक्षरब्रह्म-परब्रह्म के ज्ञान को मूर्त स्वरुप देने का श्रीजी का संकल्प था। उनकी उपस्थिति में यह समय नहीं आया था। इसलिए उन्होंने अहमदाबाद में नरनारायण देव की स्थापना की। सभी ने नरनारायण देव का जयघोष किया। महाराज ने उदासी ग्रहण की।

इस उदासी का रहस्य दूसरे भाग में है।

विश्व में कई पदवीयाँ है, परंतु साधु जैसी कोई बड़ी पदवी नहीं है। इस पदवी की प्राप्ति की और उस प्राप्ति की महिमा की बातें तीसरे भाग में है।

ब्रह्मस्वरुप योगीजी महाराज ने आफ्रिका के द्वितीय प्रवास में जाने से पहले मुंबई में उनकी डायरी की दि. 24-10-1959 की नोट में लिखा है कि, 'सभी को सिद्धांत की ओर दृष्टि रखकर गढडा मध्य 22 का प्रकरण सिद्ध करना है। श्रीजीमहाराज ने सिंधुडा बजाये है। अज्ञानरूपी अंधेरा निकाल दिये है और सभी को शांति दे दी है। आज्ञा-उपासना दृढ़ रखों। यह हमारी इतनी सिफ़ारीश है तो जीव में उतारे और खुमारी रखे और कमजोर न हो, बल रखे। बल महाराज स्वामी देंगे।' और इसी धर्मप्रवास दौरान संवत् 2015 (सन् 1959) के नये वर्ष के आशीर्वाद युगान्डा देश की राजधानी कंपाला से भारत के हरिभक्तों पर पत्र द्वारा दिया था। उसमें भी यहीं वचनामृत सिद्ध करने के लिए आदेश दिया था।

योगीस्वरूप ऐसे नारायणस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज द्वारा यह वचनामृत सिद्ध करने के लिए श्रीहरि से प्रार्थना करें।

इस वचनामृत का विशद निरूपण यहाँ प्रस्तुत है।

विक्रम संवत् 1878 की फाल्गुन शुक्ला दशमी की रात श्रीहरि गढपुर में दादा खाचर के दरबार में अक्षर ओरड़ी में सोये हुए है। उनके मन में अपने आश्रितों को सर्व प्रकार से शुद्ध करके, ब्रह्मरूप करके अक्षरधाम में ले जाने के विचार घूम रहे है। इन विचारों का वेग अत्यंत बढ़ गया और वे अर्धरात्री को जाग गये! सही रीत से तो मुमुक्षु को कागनिद्रा और हिरन की तरह गति चाहिए, परंतु श्रीहरि अपने वृत्तांत से समझा रहे है कि, शिष्य का मोक्ष करने के लिए शिष्य की अपेक्षा भगवान को अधिक चिंता है। वे उठे और चाखड़ी पहनने की थोड़ी आवाज हुई, उनके सेवक मुलजी ब्रह्मचारी भी जाग गये। महाराज ब्रह्मचारी के साथ साथ चलते हुए दरबारगढ़ में वासुदेवनारायण के चोक में आये और मंदिर के आगे दक्षिण की

ओर मुख करके पलंग पर बिराजे और मूलजी ब्रह्मचारी से कहा,'साधुओं को उठाकर यहाँ लेकर आईये। और हरिभक्तों को भी उठाकर बुलाकर लाओ।'

सभी एकदम आ गये। उन्हे मन में हुआ कि, सुबह का इंतजार किये बिना आधी रात को श्रीजीमहाराज ने हमें बुलाया है तो कौन सी बात करनी होगी?

तब सबकी जिज्ञासा की पूर्ति करते हुए महाराज ने कहा कि, 'एक वार्ता करते हैं, उसे सुनिए। जब दो सेनाएँ युद्ध के लिए तैयार खड़ी हुई हों तथा दोनों के निशान आमने-सामने लगे हों, तब दोनों पक्षों में से प्रत्येक को यही लक्ष्य रहता है कि, 'हमें अपना निशान दूसरे पक्ष के स्थान में लगा देना है और उसका निशान मिटा देना है। परंतु कोई पक्ष ऐसा विचार नहीं करता कि जब उसका निशान लेने के लिए जाएँगे, तब तक कितने ही सिर धड़ से अलग हो जाएँगे और खून की नदी बहने लगेगी।' इस प्रकार का भय नहीं रहता, क्योंकि वे शूरवीर हैं, अत: उन्हे मरने का डर होता ही नहीं। और जो कायर होते हैं वे भागने के हजारों उपाय करते रहते हैं, तथा यह भी सोचते हैं कि यदि 'अपनी सेना जीत गई तो सभी के धन और हथियारों को लूट लेंगे।' जबकि दोनों पक्षों के राजाओं के शूरवीरों को न तो मरने का ही डर रहता है और न माल लूटने का ही लोभ होता है। उनका तो एक ही लक्ष्य रहता है कि किसी भी कीमत पर दूसरी सेना का निशान हथिया लेना है और हमें ही विजय को पाना है।

इस दृष्टांत का सिद्धांत यह है कि, निशान के स्थान पर भगवान का धाम है और राजा के शूरवीरों के स्थान पर भगवान के दृढ़ भक्त हैं।'

20. एक निशान-अक्षरधाम

श्रीहरि करोड़ो मनवार (बड़ा जहाज) लेकर मुमुक्षुओं को भवसागर में से उबारकर अक्षरधाम में ले जाने के लिए आये है। इस अक्षरधाम के निशान तक सभी को पहुँचाना यही श्रीहरि को रात दिन विचार रहता है।

मुमुक्षु को तो हमेंशा जागृत करनेवाला चाहिए, वरना निशान चूक जाते है। सुकानी निरंतर सुकान को निशान की ओर घुमाया करता है और यदि तनिक भी लापरवाह रहे तो जहाज निशान चूक जाता है और इधर-ऊधर टकरा जाता है। श्रीहरि बात की शुरुआत दो सेना के दृष्टांत से करते है। वे समझाना चाहते है कि, 'शुरवीर ही निशाना लगा सकता है।' पूर्वकाल में जब गढ़ को शत्रु सेना घेरा डालती थी और जब अनाज पानी खतम हो जाते, तब गढ़ में से शूरवीर सैनिक केसरी वस्त्र पहनकर पेट में टकार मारकर 'करेंगे या मरेंगे' के सूत्र के साथ शत्रु के सामने लडने के लिए निकल पड़ते थे। जोहर करने के लिए अर्थात् पति के पीछे आग में जलने के लिए तत्पर उनकी स्त्रीयाँ भी 'मारा केसर भीना कंथ हो, सीधावोजी रणवाट' ऐसे शौर्यगीत गाकर उनका होसला बढ़ाती थी।

ब्रह्मानंदस्वामी इस शौर्यता को बिरदाते हुए कहते है कि :

पेट कटारी रे पहेरीने सन्मुख चाल्या,
पाछा न वळे रे ते कोईना ते न रहे झाल्या.
आमासामा रे ऊड़े भालां अणियाळा,
ते अवसरमां रहे राजी ते मतवाला.

'आपके पूर्वज तो रण में केवल धड़ से लड़ते थे।' ऐसे इतिहास वचन कहकर भाट चारण शौर्यगीत गाकर क्षत्रियों को लडाई में निशान लेने के लिए उनका होंसला बढ़ाते थे।

जो शूरवीर हो वह तो साथ में ही कफन रखते है। 'अर्थं साधयामि वा देहं पातयामि' यही ध्येय होता है। ऐसे शूरवीर मरता है तो उसके स्मृति चिन्ह पूजे जाते है। मरने के बाद उसे वीरचक्र प्रदान किया जाता है। शूरवीरों में 'Sacrificial Potential' 'या होम' का उत्साह रहता है। समर्पित होने का उत्साह रहता है। उसको तो मरना तो मैदान में ही मरना ऐसा एक निश्चय होता है। जापान में तो शूरवीर सैनिक देह की परवाह किये बिना शत्रु की स्टीमर के नाली में एरोप्लेन में से बम के साथ गिरते है। ऐसी शूरवीरता को 'कामीकाझी' कहा जाता है।

युद्ध में तो सरदार की आज्ञा में समर्पित हो जाने की तैयारी ही चाहिए।

इ.स. 1854 अक्टूबर की दिनांक 25 को रसिया के युक्रेन राज्य में एक क्रिश्चनयुद्ध में ब्रिटीश सैन्य लड़ रहा था। सामने शत्रुओं की तोपे चारों ओर से निशाना लगाकर खड़ी थी। ब्रिटिश फौज के कमान्डर को इसका खयाल न रहा और उसने 'आगे बढ़ो' का आदेश दे

दिया। सैनिकों ने निशान लेने के लिए देह की परवाह किये बिना अपने सरदार के वचन का पालन करने के लिए तोप के सामने उत्साह से कूच करने लगे और सभी दिशाओं में से तोप में से भयंकर गोलाबारी होने लगी, परंतु सैन्य में से कोई पीछे हटा नहीं। 673 में से 272 तो वही मर गये।

इस प्रसंग का वर्णन करते हुए लोर्ड आल्फेड टेनीस ने अद्‌भुत कविता लिखी है

The charge of the light beigade. छोटी कूमक का हमला उसमें लिखते है:

Cannon to the right of them,
Cannon to the left of them,
Cannon in the front of them.

दाँये बाँये और सामने तोपें रखी गई थी फिर भी,

Forward the light brigade!

आगे बढ़ो का आदेश पालन करके, उन्होंने 'या होम' किया। उनको तो

Theirs not to make reply,
Theirs not to reason why,
Theirs but to do and die,
into the valley of death.

उनको तो अपने सरदार को कुछ पूछना ही नहीं था। कुछ उत्तर की अपेक्षा ही नहीं थी, कुछ बुद्धि लड़ाना नहीं था। उनको तो बस एक ही तान था कि, सरदार का हुकम पालन करना और मृत्यु को गले लगाना।

इसे शूरवीर कहते है। ऐसे शूरवीर भी निशान के सामने निडरता से कुच कर सकता है और जो कायर हो उसके लिए श्रीहरि कहते है कि, वे तो भागने का हजार विचार करें।

निष्कुलानंदस्वामी ऐसे कायरों की मनोवृत्ति को अपने शब्दों में बताते है कि,

'कायर मनमां करे मनसूबा,
ऊभा रहेशु आसपास,
ऐम करतां जो चडी गया चोटे (2)
तो तरत लेशुं मुखे घास रे।'

एक कायर राजा का प्रसंग देखें...

एकबार बुंदी का किल्ला अजेय माना जाता था। बुंदी के पासवाले एक राज्य के राजा को यह किला जितने का विचार आया। उसने भरी कचहरी में प्रतिज्ञा किया कि, आज शाम तक बुंदी का किल्ला जितकर बाद में ही भोजन करुंगा। दीवान और सेनापति यह प्रतिज्ञा

सुनकर घबरा गये। उन्होंने राजा को वास्तविकता का भान कराया। 'खाडा खसे पण हाडा न खसे।' ऐसे हाडा जाती के राजपूतों द्वारा रक्षित इस किल्ले को जितना अशक्य है। यह सुनकर राजा बिल्कुल ढिला हो गया और उदास हो गया, परंतु दीवान चतुर था। उसने एक युक्ति करके गाँव की सीमा पर एक मिट्टी का छोटा सा नकली किल्ला बनाकर दिया। फिर राजा के कान में बुंदी के किल्ले को तोड़ने की तरकीब बताकर कहा, 'राजाजी! चलो बुंदी के किल्ले को जितने के लिए।' यह कायर और कमजोर राजा खुश होकर कुछ सैनिकों को साथ में लेकर बुंदी का किल्ला जितने के लिए निकल पड़ा। इस नकली किल्ले के पास से एक हाडा राजपूत निकला। उसे पता चला कि, राजा ने मेरे बुंदी के किल्ले का अपमान करने का षडयंत्र रचा है। इसलिए वह क्रोधित हो गया और वह वहाँ तीर-कमान लेकर खड़ा रह गया। उसको शूरातन आ गया और नकली किल्ला तोड़ने के लिए आनेवाले सैन्य के सामने तीर की बोछार चलाकर सैनिकों को मारने लगा। उसने अकेले ने बहुत देर तक लड़ाई की। आखिर वह गिरा और राजा ने बुंदी का नकली किल्ला तौड़कर बाद में भोजन लिया। इसलिए कहा गया है कि :

'निशान चूक माफ, नहीं माफ नीचा निशान।'

युद्ध में तो सिना तानकर छाती में घाव लेकर लड़ना होता है। यदि जिसकी पीठ में घाव हो तो वह कायर कहलाये।

भारत में से अंग्रेजी शासन हटाने के लिए सुभाषचंद्र बोझ के नैतृत्व में पूर्व के देशो में स्थापित और दिल्ली की ओर कुच करती आजाद हिंद फोज का एक ही सूत्र था : 'चलो दिल्ली।' दिल्ली का अंग्रेजो का निशान लेकर वहाँ पर भारत का निशान अर्थात् ध्वज लहराने के लिए वे विघ्नो की परवाह किये बिना दिल्ली की ओर कुच करते थे।

किसी चिंतन ने यथार्थ लिखा है कि, Obstacles are those that you see when your eyes are off the goal. ध्येय पर दृष्टि यदि न हो तो ही विघ्न दिखाई देते है। अर्थात् जिसकी ध्येय पर नजर हो उसे तो विघ्न दिखते ही नहीं प्रत्येक निशान लेने में शूरवीर होना पड़ता है।

सन् 1930, 12 वी अप्रैल के दिन गांधीजी ने अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से दांडी तक कूंच का प्रारंभ किया। तब उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि, 'कौए कुत्ते की मौत मरुंगा, लेकिन स्वराज लिये बिना इस आश्रम में पैर नहीं रखुंगा।' अनेक विघ्नो के बीच उन्होंने वह निशान लिया। इसलिए सुभाषित में लिखा है कि,

विघ्नैः पुनः पुनः प्रतिहन्यमानाः।
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति॥

भारत को खोजने के लिए निकले हुए क्रिस्टोफर कोलंबस को समुद्र में कई कठिनाईयाँ

आई थी। कई दिनों तक धरती दिखती ही नहीं थी। इसलिए उबकर उसके साथी उन्हे गुस्सा होकर उन्हे मार डालने के लिए तैयार हो गये थे। आखिर उनको धरती मिली, परंतु वह धरती तो अमरिका की थी। फिर भी कोलंबस के मन में तो अंत तक ऐसा लगता था कि, मैने भारत खोजा। हिमालय का श्रेष्ठ शिखर गौरीशंकर का निशान लेने के लिए कई लोग मर गये, परंतु आखिर वह निशान तेनसिंह और हिलेरी ने लिया। स्नान करने में गर्म पानी को खोजनेवाला व्यक्ति कभी गौरीशंकर शिखर पर विजय पाने का संकल्प ही नहीं कर सकता। उसके लिए तो गिरनार ही गौरीशंकर है।

चंद्र का निशान लेने में भी अमरिका ने कई वर्षो तक प्रचंड पुरुषार्थ किया था। समुद्र में से मोती लेने जानेवाले गोताखोरों की हिम्मत को बधाई देते हुए मुक्तानंदस्वामी ने कहा है कि,

'मरजीवाने मार्गे जन कोईक जावे रे.

पहेलुं परठे मोत ते मुक्ताफल पावे रे।'

जहाज में बैठकर विदेश की सफर करनेवाले कोई कोई जहाज समुद्र के तुफान में डूब भी जाते थे, फिर भी विदेश का निशान लेने जानेवाला कभी पीछे नहीं हटता था। विघ्नों को गले लगाकर कोई साहसिक तैराकी इंग्लिस चेनल या श्रीलंका की समुद्रधुनी तैर जाता है।

आफ्रिका खंड के मलावी प्रांत के एक अत्यंत गरीब लड़का लेक्झन कायरा को अमरिका में पढ़ाई करने जाने का संकल्प हुआ। यह निशान सिद्ध करने के लिए उसको बहुत परेशानी भूगतनी पड़ी, परंतु आखिर वह अमरिका पहुँचा। गणित के रेंगलर डॉक्टर नरसिंहभाई मूलजीभाई शाह सतत 20 वर्ष तक 18 घंटे गणित के अध्ययन में लगे रहते थे।

यदि कुछ पाना है तो कुछ खोना पड़े। 'दोनों हाथ में लड्डु जैसा न हो जाये।' ऐसे तो अनेक निशान है और उसके पिछे पड़े हुए अनेक समस्याओं में भी उस निशान को पाकर ही रहते है, परंतु प्रकृति अंतर्गत ये सभी निशान आखिर में तो नाशवंत है। निष्कुलानंद स्वामी कहते है कि :

'प्रकृतिपुरूष प्रलयमां आवे, भव ब्रह्मा न रहे कोई रे'

इजराईल में अनेक कष्ट सहन करके बड़ा साम्राज्य स्थापन करनेवाला किंग सोलोमन के महल की जगह पर आज मिट्टी के ढेर है। इसलिए अचल निशान है, अक्षरधाम।

निष्कुलानंदस्वामी कहते है कि,

'जेह धामने पामीने प्राणी पाछुं पडवानु नथी रे।'

श्रीहरि ने दो सेना का दृष्टांत देकर यह अक्षरधामरूपी निशान लेने की बात बताई है।

गुणातीतानंदस्वामी भी इसकी पुष्टि करते है कि, हमें तो अक्षरधाम में जाना है ऐसा एक संकल्प रखना चाहिए।

21. हरि का मार्ग है शूरवीरों का

गुणातीतानंद स्वामी ने तीसरे प्रकरण की चौदहवीं बात में बताया है कि, हमने प्रभु भजन करने के लिए देह को धारण किया है, परंतु जो पंचविषय है वह दंभघोष के पुत्र जैसे है, वह भगवान के पास पहुँचने नहीं देते है।

रुकमणी का संबंध दंभघोष के पुत्र शिशुपाल के साथ हुआ था। परंतु उन्होंने एकबार श्रीकृष्ण भगवान के गुण सुने और उनमें मुमुक्षुता जागृत हो गई। और उसने निश्चित किया कि, 'वरूं तो एक श्रीकृष्ण ने ज वरूं, नहीतर जीभ करड़ी ने मरूं.' परंतु दंभघोष के पुत्र शिशुपाल के साथ शादी कभी नहीं करुंगी।

सती भी शंकर भगवान के साथ शादी करने का तय करके तप कर रही थी। उनका भी ऐसा ही प्रण था कि, 'कोटि जन्म लगी रगड़ हमारी, वरुं शंभु के रहु कुवारी।'

मीराबाई को भी अखंड वर ऐसे भगवान की चुड़ी पहनने की लगन लगी थी। वह कहती थी कि,

'ऐसे बर को क्या बरे, जो जन्मे और मर जाय।

बर बरीयो गिरधरलालजी, म्हारो चूडलो अमर हो जाय।'

भगवान को मिलने की ऐसी तत्परता से अनेक विघ्नो को पार करके ये तीनों ने भगवान को प्राप्त किया। कठोपनिषद में भगवान को पाने के मार्ग का वर्णन आता है कि,

'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति।'

उस्त्रे की धार पर चलने जैसा कठिन मार्ग है, इसप्रकार ऐसे कठिन इस प्रेम के मार्ग पर चलना भी कठिन है। जो व्यवहार मार्ग में कुछ नहीं समझता है उसे लोग 'भगत' कहते है। बेकार बैल को भी भगत कहते है। भक्ति मार्ग में भगत शब्द की परिभाषा ऐसी नही है। ऐसे भक्तों से कभी अक्षरधाम का निशान नहीं लिया जा सकता। क्योंकि

'हरिनो मारग छे शूरानो, नहीं कायरनु काम जो ने,

परथम पहेलुं मस्तक अर्पे, वर्ती लेवुं नाम जोने।'

हरि का मार्ग विकट है, बहुत सावधानी से इस मार्ग पर चलना चाहिए।

'हरि का घर दूर है, जैसे लंबी खजूर,

चडे तो हरि रस पावे, और पडे तो चकनाचूर।'

हरि का घर अर्थात् अक्षरधाम। वहाँ जाने के लिए कैसी तैयारी करना उसके लिए ब्रह्मानंदस्वामी लिखते है कि,

'रे शिर साटे नटवरने वरीए, रे पाछां ते पगलां नव भरीये,

रे समज्या विना नव नीसरीये, रे रणमध्ये जईने नव डरीए,

त्यां मुखपाणी राखीने मरीये...

रे पहेलुं ज मनमां त्रेवडीए, रे हो रे हो रे युद्धे नव चडीये,

जो चडीए तो कटका थई पडीये...

रे रंग सहित हरिने रटीए, रे हाक वागे पाछा नव हटीये...

ब्रह्मानंद कहे त्यां मरी मटीये...'

इस मार्ग पर चलना कोई साधारण आदमी का काम नहीं है। इसलिए इस मार्ग पर चलते हुए मरद का लक्षण बताते हुए कहते है कि,

टेक न मेले रे ते मरद खरा जगमांही, त्रिविध तापे रे केदी अंतर डोले नाहीं,

निधडक वर्ते रे दढ़ धीरज मनमां धारी, काळ करमनी रे शंका देवे विसारी।

ध्येय तक पहुँचने के लिए ऐसे शूरवीरता भरे पुरुषार्थ में भगवान की प्रार्थना यदि मिल जाये तो अवश्य ध्येय सिद्ध होता है।

दो बालिकाएँ शाला में जा रही थी। रास्ते में बरसात शुरु हुई। एक बालिका दूसरी को कहे,'हम खड़े रहे और भगवान से प्रार्थना करे और बरसात बंद हो जाये।'

यह सुनकर दूसरी बालिका बोली। हम खड़े रहकर नहीं परंतु दौड़ते दौडते प्रार्थना करे तो भगवान हमारी प्रार्थना जल्दी सुनेंगे।

हम अक्षरधाम के मार्ग पर चल रहे है, परंतु उसमें कठिनाईयाँ आ जाये तो केवल प्रार्थना नहीं, परंतु भक्ति करते हुए अक्षरधामरुपी निशान की ओर दौड़े। हमारा यह प्रयत्न देखकर भगवान को भी पक्का होगा कि, यह वाकयी में शूरवीर है, उसको मुझे पाने की लगन है।

फिर 'दृढ़ता जोईने रे तेनी मदद करे मुरारी।' जिस प्रकार कोई छोटा बालक वृक्ष पर फल लेने के लिए पहुँच नहीं पाता है, इसलिए वह कूदता रहता है। इसके प्रयत्न को देखकर किसी राही को मन में दया आती है और वह उसको आम तोड़कर देता है। उसी प्रकार शूरवीर भक्त का पुरुषार्थ देखकर उस पर ईश्वर कृपा होती है। ऐसी दृढ़ शूरवीर भक्त के लिए श्रीहरि कहते है कि, उसे तो इस संसार में चाहे मान हो या अपमान हो, शरीर को सुख मिले अथवा दु:ख मिले शरीर रोगी रहे अथवा निरोगी रहो, देह जीवीत रहे या मरे, परंतु उसके मन में किसी प्रकार का विचार नहीं रहता कि, 'मुझे इतना दु:ख होगा कि, मुझे इतना सुख होगा।' इन दोनों में से किसी प्रकार का विचार नहीं रहता। उस भक्तजन को तो हृदय में ऐसा ही दृढ़ निश्चय है कि, 'इस शरीर से भगवान के धाम में जाकर ही निवास करना है, परंतु बिच में कही लूभाना नहीं है।'

(1) चाहे मान हो या अपमान (2) शरीर को दु:ख मिले या सुख

(3) शरीर रोगी रहे या निरोगी

प्रथम हम इन तीन विधानों को चार-चार प्रकार से देखे और अंतदृष्टि करके हम किस प्रकार के भक्त है उसकी जॉच करें।

22. चाहे मान हो या अपमान

इसमे हम चार बात समझे। जैसे कि, (1) मान में विचलित (2) मान में प्रगति (3) अपमान में अधोगति (4) अपमान में प्रगति।

(1) मान से विचलित :

द्रविड देश के ब्राह्मण मगनीराम को भगवान को पाने की लगन लगी। इसके लिए उसने युवावस्था में गृहत्याग किया। उसने जाना कि, यदि शारदादेवी प्रसन्न हो जाये तो भगवान मिले। सौभाग्य से उसे शारदादेवी सिद्ध करे हुए गुरु मिल गये। उसने उनके द्वारा शारदादेवी को प्राप्त किया। उनके गुरु भी द्रविडी थे। उन्होंने मगनीराम को अपनी युवान पुत्री से शादी करने के लिए कहा, परंतु मुमुक्षु मगनीराम ने मना कर दिया। और वहाँ से चल दिया। शारदादेवी के प्रताप से उसे सिद्धियाँ प्राप्त हुई थी। उसको उसका मान आ गया और भगवान प्राप्त करने का छोड़कर सिद्धियों द्वारा लोगों पर अपना प्रभाव डालकर उन्हे डराने लगा। उसने अपना एक बड़ा शिष्यवृद्ध खड़ा किया। बड़े बड़े राजाओं और मठधारियों को डराकर उनके पास से बड़ी रकम लेता था। मान में भगवान के मार्ग से विचलित हो गया। वह अपना निशान चूक गया। जोकि, पूर्व के संस्कार से उसको मांगरोल में बिराजित भगवान स्वामिनारायण का योग हो गया, परंतु एक उदाहरण सिद्ध हो गया कि सिद्धियों के मान से भगवान के मार्ग से विचलित हो जाते है।

गोंडल के सेखजी को महाराज ने ऐश्वर्य देकर सिंध में सत्संग करवाने जाने का आदेश दिया। रास्ते में आते गाँव में महाराज ने दिये हुए ऐश्वर्य का उपयोग किया। उनकी दाढ़ी के सामने जो देखे उसे समाधी हो जाती और वह अक्षरधाम में जाता। सेखजी की वाह, वाह होने लगी। सेखजी को मान आ गया। सिंध में जाना छोड़कर और महाराज को छोड़कर स्वयं की पूजा करवाने लगा। फिर तो महाराज ने ऐश्वर्य वापस ले लिया। सेखजी पहले जैसे थे वैसे हो गये।

भूज के रवजी सुथार का भी ऐसा ही प्रसंग है। किसी को अच्छी कथा करना आता हो, उससे उसके प्रशंसक बढ़ते है। इसमें यदि वह सतर्कता चूक गया तो वह अपना स्वतंत्र मंडल करके वह अपनी पूजा करवाने लगता है और मोक्ष मार्ग से उसका पतन शुरु हो जाता है। ऐसे आत्मसंभावित अर्थात् स्वयं बड़े बन बैठे हुए व्यक्ति। ऐसा व्यक्ति स्वंय ही गुरु होकर मोक्ष मार्ग से विचलित होता है और उसके साथ जुड़े हुए शिष्यों को भी मोक्ष मार्ग से विचलित करता है।

जिस प्रकार एक कोलेज की टीम दूसरी कॉलेज में खेलने जाये, तब पांच-पच्चीस विद्यार्थीयों को होसला बढ़ाने के लिए साथ में ले जाते है। अपनी टीम जब अच्छा खेले तब ये सारे साथ मिलकर उसकी वाह, वाह करें। उसी प्रकार स्वयं की पूजा करवाने के इच्छुक

अभिमानी मिथ्या गुरुओं भी अपना 'वाह, वाह मंडल' साथ में ही रखते है। मान में से विचलित लोगों का वर्णन करते हुए निष्कुलानंद स्वामी कहते है कि,

'जेणे गण्यो पोतामां गुण, जाण्युं हुं पण छउ कंई कामनो रे,
त्यारे कोने वध्यो कुण, लेतां आशरो सुंदर श्यामनो रे,
ज्यारे करी दीनता त्याग, अंगे लीधो अहंकारने रे,
त्यारे मळ्यो मायाने लाग, खरो करवा खुवारने रे,
पछी प्रभु पामवा काज, जे जे कर्युं हतुं आ जगमां रे,
ते तो सर्वे खोयो साज, पड्यो ठाउको जई ठगमां रे।'

स्वयं में कुछ गुण आ जाये और उस गुण के अभीमान से 'मैं कुछ हूँ।' इसप्रकार स्वयं ही अपनी महिमा समझने लगता है और उसमें से उसका पतन होता है।

श्रीहरि की आज्ञा और प्रेरणा से मुक्तानंदस्वामी ने शास्त्रार्थ में बडौदा की सभा में विजय पाया तब निर्विकल्पानंद और हर्यानंद को उन पर ईर्ष्या हुई। वे मोक्ष के लिए ही आये थे, परंतु उन्हे अपनी विद्वत्ता का मान आया और उस मान में से ईर्ष्या प्रकट हुई और उन्होंने सोचा कि, महाराज ने मुक्तानंदस्वामी को सभा में जीत पाने के लिए भेजा, परंतु 'हम तो उनकी अपेक्षा विशेष विद्वान है। इसलिए हमको भेजना चाहिए था। महाराज को हमारी कोई कदर नहीं है।' मान से उन्हे ऐसा भाव हुआ जिसके पास मोक्ष लेने आये थे ऐसे महाराज का ही उन्होंने अभाव लिया। और इस मानरुपी दोष के कारण वे भगवान के मार्ग से विचलित हो गये और वे सत्संग में से निकल गये।

भगवान और संत हमें संभालने के लिए हमारे संकल्प पूरे करते है। हमारे घर पधरावनी करते है, सभा में माला पहनाते है। इसप्रकार हमें प्रसन्न करे तब हमें मान आ जाये कि, मैं भी कुछ हूँ। यदि ऐसे प्रसंग में सतर्कता न हो तो सत्संग में से गीर जाते है।

एक किसान राजा के अपराध में आया और राजा ने उसे उसी रात को गाँव छोड़ देने को कहा। किसान होशियार था। उसने गाँव छोड़ा नहीं। सुबह में वह श्रीफल और शक्कर लेकर राजा के पास गया। उसे देखकर राजा गुस्से हो गया और बोला,'क्या अभी तक तूने गाँव नहीं छोड़ा?'

किसान ने कहा,'मैं तो मेरा सामान लेकर रात को निकल गया था, परंतु गाँव की सीमा पर ही आपने मुझे भगवान के रुप में दर्शन दिये, आपने सिर पर मुकट पहना था और चार हाथ में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये थे। आपके ऐसे दर्शन से मुझे हुआ कि, मेरे राजा तो साक्षात् भगवान है और मैने उनका अपराध किया वह बड़ा पाप किया है। इसलिए मैने मनौति रखी थी कि यह भेंट चढ़ाकर बाद में गाँव छोड़ना। इसलिए यह मनौति पूरी करने के लिए मैं आया हूँ।'

यह सुनकर राजा के पास बैठे दिवान ने राजा से पूछा, राजा साहब! यह किसान बोल रहा है क्या उस प्रकार आपने उसे दर्शन दिये थे? क्या आप भगवान है? राजा को भी भ्रम हो गया।

उसने कहा,'यदि ये किसान कहता है तो शायद भगवान हो सकता हूँ।' राजा ने ऐसा ही मान लिया।

श्रीजीमहाराज के समय में भी कईयों को ऐसा हो गया था कि, मैं भी शायद भगवान हो सकता हूँ। उस समय साढ़े बारह भगवान हो गये थे। मान के कारण प्रशंसा में आ जाये तो अक्षरधामरुपी निशान चूक जाये।

2. मान में विचलित न हो।

श्रीहरि के परमहंसों ने कैसी कैसी अनुभूतियाँ की थी उसे हम देखे। जिसके एक एक रोम में अनंतकोटि ब्रह्मांड अणु की तरह उड़ते है ऐसे अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी, ग्रहण की गति को बदल दे ऐसे अष्टांगयोगी गोपालानंदस्वामी, कवि कर्म में माहिर ऐसे ब्रह्मानंदस्वामी, मरी हुई घोड़ी को जिंदा कर दे ऐसे व्यापकानंदस्वामी – नामों की सूचि बहुत लंबी हो सकती है। ऐसे कई ऐश्वर्यवान परमहंस श्रीहरि के वृंद में थे। वे सभी अपना अलग संप्रदाय चला सके ऐसे समर्थ थे। उनके चाहक भी बहुत थे। फिर भी वे श्रीहरि की भक्ति में से विचलित नहीं हुए। सभी प्रकार के मान को छोड़कर दास बनकर रहे यहीं श्रीहरि के सर्वोपरिपना और ऐसे समर्थ परमहंसो का निशान के उपर नजर थी।

शास्त्रीजी महाराज के समय में वसो गाँव के मगनभाई ने अद्‌भुत कथावार्ता करके आफ्रिका में हजारों सत्संग बनाये थे। उन सभी को अक्षरपुरुषोत्तम की निष्ठा दृढ़ करवाकर शास्त्रीजीमहाराज के साथ जोड़े थे। उनको तो शास्त्रीजी महाराज को प्रसन्न करने का ही ध्यान था। योगीजी महाराज की साधुता का प्रभाव अनेक लोगों पर था। सभी उनकी ओर मान की दृटि से देखते थे फिर भी योगीजी महाराज तो दासानुदास बनकर ही रहे। वे कहते थे कि, 'कोई मेरी जयंती मनाये वह मुझे पसंद नहीं। मेरी कोई पूजा करे, मुझे कोई माला पहनाये, मुझे कोई दंडवत् करे, मेरी कोई जय बुलाये वह तनिक भी पसंद नहीं है। यह मैं निष्कपटभाव से कहता हूँ।'

1953 में उत्तरभारत की धर्मयात्रा में छपिया स्टेशन पर स्वामीश्री के लिए सात हाथी आये थे। परंतु स्वामीश्री हाथी पर नहीं बैठे। सलाड़ गाँव में मणिभाई भट्ट ने शास्त्रीजी महाराज के पास आज्ञा दिलवाकर योगीजीमहाराज को जबरदस्ती से हाथी पर बिठाये थे। योगीजीमहाराज जब हाथी से नीचे उतरे तब योगीजीमहाराज ने मणिभाई से कहा,'आपने हाथी पर बिठाकर मेरी लाज ले ली।' अपनी प्रतिष्ठा को शूकरीविष्टा माननेवाले में मान कहा

से संभव हो सके ? तो उसमें से विचलित होने का प्रश्न ही नहीं रहता।

1985 में लंदन में 20,000 हरिभक्तों की उपस्थिति में प्रमुखस्वामी महाराज का स्वर्णतुला महोत्सव मनाया गया। महोत्सव की इस सभा के बाद स्वामीश्री मोटर में बैठकर सहजरुप से शांति से देश में से आये हुए पत्र पढ़ने लगे। मानो स्वर्णतुला महोत्सव हुआ ही नहीं है। 1992 में बी.ए.पी.एस. संस्था द्वारा आयोजित भव्यातिभव्य भारतीय सांस्कृतिक महोत्सव पर पधारे हुए महानुभावों ने स्वामीश्री से कहा,'आपने तो इस महोत्सव द्वारा कमाल कर दिया।'

तब स्वामीश्री तुरंत ही बोले,'यह सब भगवान का प्रताप है। हम से तो कुछ नहीं हो सकता।' मान-सन्मान में भगवान का निशान चूकना नहीं। पाटनगर कोटावा में कनाडा की पार्लामेन्ट में स्वामीश्री का सन्मान हुआ। तब सन्मान लेने के लिए जिस संत के हाथ में ठाकुरजी थे उनको खड़ा किया। बाद में स्वयं खड़े हुए।

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंदस्वामी द्विशताब्दि महोत्सव की पूर्णाहुति पर स्वयं सेवकों की सभा में स्वामीश्री बोले थे कि, 'मैने तो केवल कुर्सी की शोभा बढ़ाई है। आप सबको करोड़ करोड़ दंडवत् करे फिर भी वह कम है।' संस्था के सभी कार्यो की प्रेरणामूर्ति स्वयं होने पर भी किसी भी कार्य का यश लेने के लिए वे तैयार नहीं है। लाखों लोगों को उन्होने सत्संग करवाया है। देश-विदेश के पढ़े लिखे सैंकड़ो युवानो को संसार त्याग करवाकर साधु बनाये है। देश-विदेश में सैंकड़ो छोटे-बड़े मंदिर बनाये है। समाज उपयोगी अनेक कार्य किये है फिर भी वे कभी ऐसा नहीं बोले,'देखिए ये मेरी सिद्धियाँ।'

एक फोटोग्राफर ने स्वामीश्री से कहा,'आप जरा सीना तानकर खड़े रहीये तो फोटो अच्छा आयेगा।'

स्वामीश्री ने कहा,'मैने कभी सीना ताना नहीं है इसलिए मुझे ऐसा करना नहीं आता है।'

स्वामीश्री के जीवन कार्य को भावांजलि देने के लिए सत्संगीयों को स्वामीश्री का अमृतमहोत्सव मनाना था। स्वामीश्री इस विषय में उदास थे। उन्होंने इस विषय पर कहे वचन हम देखें।

'भजन, दर्शन, कथा और सेवा उससे बड़ा अमृत कौन-सा है? यदि वह हो वही अमृत महोत्सव। मैं और मेरा छूट जाये। हरख-शोक न रहे। ऐसे उत्सव तो रोज रोज करते है।'

दिनांक 27-10-1994 में राजकोट मंदिर में एक गोष्ठि में स्वामीश्री ने कहा था कि, 'मुझे ऊँचे चढाने के लिए बहुत लोग बातें करते थे, परंतु मुझे उपर चढ़ना ही नहीं था।' अपने आप सीढ़ी लेकर चढ़नेवाले बहुत होते है। जब स्वामीश्री को कईबार चढ़ाने का प्रयत्न करने पर भी उन्हे दास रहने में ही पसंद है। 1991 अक्षरधाम उद्घाटन पर गौरांग चटोपाध्याय नामक महानुभाव स्वामीश्री का निर्मानी गुण देखकर बोल उठे थे कि, 'हम लोग

आज तक ऐसा समझते थे कि, यदि आगे आना हो तो 'मैं कुछ हूँ ऐसा समझना पड़े।' परंतु स्वामीश्री तो बिल्कुल अहंशुन्य रहकर आगे आये है। यह देखकर हमारी समझ ही बदल गई।' मुक्तानंदस्वामी मान से तनीक भी विचलित न हुए हो ऐसे संतो के लिए कहते है कि,

सब गुण पूरण परम विवेकी, गुण को मान न आवे
नारद ऐसे संत सदा मोहे भावे।

भक्तो और गुणानुरागी स्वामीश्री का बहुत सन्मान करते है। यदि दूसरा कोई सामान्य हो तो वह ऐसे सन्मानों में फूल जाता है, परंतु जिसको मान का ही भान नहीं है ऐसे स्वामीश्री को मान कहाँ से विचलित कर सकें ?

3. अपमान से विचलित होते है।

अपमान में कल्याण के मार्ग से विचलित नहीं होना वह बहुत बड़ी बात है। अधिकतर ज्ञानी-अज्ञानी, भक्त-अभक्त इससे विचलित हुए है। दुर्वासा महानऋषि थे, फिर भी अंजाने में हुए अपमान भी वे सहन नहीं कर सकते और शाप दे देते थे। विश्वामित्र को भी ऐसा ही था।

तावी गाँव से देवडिया जाते समय बिच राते में एक वृक्ष के नीचे महाराज बैठे। किसी संत ने मुक्तानंदस्वामी के लिए आसन बिछाया और उस पर पूर्णानंदस्वामी बैठ गये। महाराज ने कहा,'क्या किसी ने मान की मूर्ति देखी है ? ये जो सिर पर रुमाल बांधा है और कंधे पर सरोद लेकर खड़े है वे ही मान की मूर्ति है।' परीक्षा लेने के लिए महाराज ने उसके मान का खंडन किया और पूर्णानंदस्वामी को बहुत बूरा लग जाने से वे त्यागाश्रम छोड़कर चले गये।

अकाल के समय सदाव्रत चलानेवाले वस्ताखाचर के वहाँ अनाज पूरा हो गया। महाराज ने वस्ताखाचर के पास अनाज और रुपये दिलवाये। उन्होंने प्रसन्न होकर दिये बाद में श्रीजी महाराज ने अलैया खाचर से कहा, 'आप भी हजार रुपये दीजिए। अगले वर्ष जीवाखाचर आपको दे देंगे।' परंतु अलैया खाचर ने नहीं दिये।

तब महाराज बोले,'वस्ता जैसा अलैया नहीं है।' और उसको अपमान लग गया और वह सत्संग में से विचलित हो गये।

'मंदिर का बिछाना न बिगड़े इसलिए पैर धोकर आना।' ऐसे हितकारी वचन यदि किसी से कोई कहे तो वह मानी आदमी अपमान मानकर मंदिर में आना बंद कर देते है।

स्वयं ने सेवा की हो, उसका उल्लेख करना भूल गया हो, मंदिर में ठीक तरह आवास मिला न हो, किसी स्वयं सेवक ने कार या स्कूटर ठीक तरह से पार्किंग करने के लिए। स्वामीश्री विश्राम में हो और स्वयंसेवक ने रुम में आने से रोका हो, अपने आप को बड़ा मान लिया हो ऐसे कोई व्यक्ति को स्वयं सेवक ने आगे बैठने न दिया हो। ऐसे ऐसे कारणो

से अपना अपमान मानकर जो सत्संग से विचलित हो जाते है तो ऐसा समझे कि, उनकी नजर निशान पर नहीं है।

4. अपमान में भी विचलित न हो।

जीवन संग्राम में अपमान वह सबसे बड़ी कसौटी है। 'The deepest feeling of every human being is craving to be appreciated.' मेरी कोई प्रशंसा करे ऐसी ईच्छा प्रत्येक मानव में पड़ी हुई है। प्रत्येक व्यक्ति मान को चाहता है और यदि वह न मिले और उसकी अपेक्षा अपमान हो जाये तब उसे वह मृत्यु जैसा दु:ख लगता है। उसमें भी जो प्रतिष्ठित होते है उसको तो अपना अपमान वह मृत्यु से भी अधिक दु:खदायक लगता है। मंदिर में ठीक तरह से आवास न मिले, वी.आई.पी. में भोजन न मिले, बिना समय का स्वामीश्री के दर्शन का आग्रह रखा हो और स्वयं सेवक ने उसको रोका हो। सभा में आगे बैठने नहीं दिया हो और स्वयं सेवक ने उठा दिया हो आदि बातों में अपना अपमान मानकर तीन पीढ़ी के सत्संग को छोड़ देनेवाले भी कई होते है। बड़े बड़े व्यक्ति भी ऐसी कसौटी में निशान चूक गये है। और इसमें जो खरे उतरे वही शूरवीर कहलाये। सारांश इतना ही है कि, अच्छा आवास, अच्छी भोजन व्यवस्था, आगे बैठना आदि की अपेक्षाएँ सत्संग से विचलित होने के साधन है। लौकिक मार्ग में हर जगह अपमान होते ही है। आफिस में बोस द्वारा होता अपमान उसे सहन करता है, क्योंकि तनख्वा पर नजर है, शादी में सास नाक खिचकर अपमान करती है, उसे सहन करता है, क्योंकि उसकी नजर कन्या लेने पर है। घर में पत्नी और लड़के अपमान करते है, क्योंकि स्वार्थ से भरा स्नेह है। भीखारी अपमान सहन करता है, क्योंकि भूख का दु:ख। गुलाम भी अपमान सहन करता है क्योंकि वह गुलाम है।

इसप्रकार लौकिक मार्ग में लोग स्वार्थ से और परिस्थिति के वश होकर अपमान को सहन करते है, परंतु अलौकिक मार्ग पर – भगवान के मार्ग पर सहन नहीं होता है।

निष्कुलानंदस्वामी ने इसका कारण बताया है कि,

खोळी खोळीने खोळीयुं, खरा खपवाळानी खोट रे।

गरज की कमी उसका निशान चूका देती है। मोक्ष की गरजवाले को भीमनाथ के रंक के जैसी गरज चाहिए। अकाल के समय में भीमनाथ मंदिर में भूखे लोगों को, साधुओं को एक कटोरी अनाज मिलता था। इसको पाने के लिए लोग भीड़ करते थे। अनाज देनेवाला उसे धक्का मारकर गिरा देता था। फिर भी वापस खड़े होकर खीडकी के पास अनाज लेने के लिए खड़े रहते थे क्योंकि भयंकर अकाल में इसके सिवा अनाज मिलने का कोई ठीकाना ही नहीं था। कैकयी के वचन से दशरथ राजा ने रामचंद्र भगवान को चौदह वर्ष का वनवास

दिया। सीताजी ने भी पति का अनुसरण किया। अपनी पत्नी उर्मिला की विदाय लेकर भाई लक्ष्मण भी राम की सेवा में निकल पड़े। लक्ष्मणजी सीतामाता के पैर छूते थे फिर भी उनके मुख से सामने नहीं देखा था। लक्ष्मणजी अनन्य निष्ठा से राम की सेवा करते थे। राम को वन में से वापस लाकर उनको गद्दी पर बिठाने के हेतु से भरत राम के पीछे आये। राम वापस तो नहीं आये परंतु भरत की भक्ति देखकर राम ने लक्ष्मण को थोड़े अपमानजनक शब्द कहे, 'भरत जैसी तेरी भक्ति नहीं है।' फिर भी रामभक्त लक्ष्मण को तनिक भी बूरा नहीं लगा। एकबार सिता के आग्रह से राम लक्ष्मण को सिताजी का रक्षण करने का कहकर स्वर्णमृग लेने गये। मृग का रुप धारण किये मारिच ने 'हे लक्ष्मण!' इसप्रकार राम की आवाज में आवाज दी। यह आवाज सुनकर सिताजी ने लक्षण को राम की मदद में जाने के लिए कहा। लक्ष्मण तो जानते थे कि, राम तो सर्वशक्तिमान है, उन्हे मार सके ऐसा कोई नहीं है। इसलिए सीता का आग्रह होने पर भी सीता की रक्षा के लिए रुके हुए लक्ष्मण राम की मदद में नहीं गये। इसलिए सीता ने गुस्से होकर अंतिम कक्षा के अपमान जनक शब्द कहे : 'तूं मित्र के रुप में हमारा शत्रु लगता है। मेरी प्राप्ति के लिए तूं राम की रक्षा में नहीं जाता है इसलिए ही तूझे राम का दु:ख प्रिय लगता है।' फिर भी लक्ष्मण ने जाने से मना कर दिया। फिर तो सीता ने असह्य शब्द सुनाये।

'अनार्य करुणाम्भ नृशंस कुलपांसन।
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्॥'

'हे अनार्य! हिंसक, कुल को लांछन लगाने वाला, हाल राम को दु:ख है और मैं तुझे प्यारी लगती हूँ, इसलिए ही तूझे ऐसे विचार आते है।' ऐसे अपमानयुक्त शब्द सुनने पर भी लक्ष्मण हाथ जोड़कर कहते है : 'आप मेरे लिए देवीरुप हो।' आग्रह होने पर लक्ष्मणजी पर्णकुटीर के आगे रेखा लगाकर, सीताजी को उससे बाहर नहीं आने का कहकर, वन देवता को सीताजी की रक्षा करने के लिए प्रार्थना करके गये। लक्ष्मणजी को आते हुए देखकर राम गुस्से हो गये और बोले, 'सीता को अकेली छोड़कर क्यों आया?' ऐसा कहकर खूब उल्हाना दिया। लक्ष्मणजी ने नम्रता से वह स्वीकार कर लिया। उनको ऐसे अपमानों में भी सीताजी या श्रीराम का अवगुण नहीं आया, क्योंकि उनको सीता-राम को प्रसन्न करने की लगन थी।

अंबरीष राजा ने एकादशी का व्रत किया था। उसके समापन में दुर्वासाऋषि अतिथी के रुप में आ गये। राजा प्रसन्न हुए। ऋषि भोजन पूर्व स्नान करने गये। स्नान करने में समय लगा। उपवास खोलने का मुहुर्त जा रहा था। इसलिए ब्राह्मणों के आग्रह से राजा ने तुलसी के उपर पानी की बूंद रखकर उसे खाकर उपवास खोल दिया। दुर्वासा को पता चला इसलिए उनको बहुत क्रोध आ गया। उन्होंने अंबरीष का बहुत भयंकर अपमान किया। और अंबरीष को मार डालने के लिए अपनी जटा में से एक कृत्या उत्पन्न की। भक्त अंबरीष की रक्षा

में भगवान ने रखा हुआ सुदर्शनचक्र कृत्या को जलाकर दुर्वासा को मारने को तैयार हुआ। दुर्वासा ऋषि घबराकर रक्षा के लिए सब जगह भटकने लगे। परंतु किसी ने उसकी रक्षा नहीं की। आखिर विष्णु भगवान के पास जाकर रक्षा मांगी। भगवान ने कहा, 'एक बार छूटा हुआ मेरा यह चक्र निशान लिये बिना वापस नहीं आता है, परंतु एक उपाय है। यदि अंबरीष आपको क्षमा करे तो वह वापस आयेगा।' दुर्वासा जीव बचाने के लिए अंबरीष के पास गये। इस कार्यवाही में एक वर्ष बीत गया। तब तक अंबरीष बिना खाये पीये अतीथि दुर्वासा की प्रतिक्षा में थे। दुर्वासा अंबरीष के पैरों में गिर पडे। अंबरीष ने उन्हे खड़ा करके प्रणाम करके कहा,'हे सुदर्शनजी! जब दुर्वासा पहली बार यहाँ आये तब उस समय मुझे उनके प्रति जैसा भाव था वैसा का वैसा भाव यदि अभी भी हो तो आप वापस चले जाईये।' और सुदर्शन वापस चला गया।

ऐसे भंयकर अपमान में भी अंबरीष विचलित नहीं हुए, क्योंकि वे शूरवीर भक्त थे। तुकाराम को अज्ञानी लोगों ने सिर पर मुंडन करवाकर चूना लगाया, गले में गाजर की माला पहनाई, गधे पर उल्टे मुंह बिठाया और होहल्ला करते हुए पूरे गाँव में उन्हे घूमाया फिर भी वे हंसते रहे। क्योंकि उनको विठ्ठलजी को प्रसन्न करना था।

भगवान स्वामिनारायण को वनविचरण में एक सदाव्रती जगह में बावाओं ने सत्रहबार भोजन में बैठने से उठाये थे। ऐसा अपमान सहन करके जगह का कल्याण करने के लिए अठारहवी बार दो ग्रास लेकर अपमान को कम से कम सत्रहबार सहन करके एक उदाहरण पूरा किया। श्रीहरि के आणंद आदि स्थानों में अपमान हुए फिर भी उसे सहन करके 'जेना निर्मानी भगवान तेना जनने केम जोईये मान।' यह सिद्धांत मुमुक्षुओं को समझाया था।

हिन्दुस्तान के बड़ी बड़ी जगह के महंतों, प्रकांड पंडितो, गिरासदार, तहसीलदार, वतनदार, शेठ-साहुकार और अन्य प्रतिष्ठित श्रीहरि के प्रभाव से आकर्षित होकर साधु हो गये थे। श्रीहरि के परमहंसो को स्वामिनारायण के मुंडिया कहकर वैरागीलोग अपमान करते, मार-मारते फिर भी वे, 'गाळ अपमान ने तिरस्कार ते तो साधुना छे शणगार।' ऐसा मानकर सबकुछ सहन करते थे। इतना होने पर भी उपर से श्रीहरि भी उनका भंयकर अपमान करते, तिरस्कार करते फिर भी ये मोक्षभागी परमहंस अडिग रहते। जहाँ अपमान हो वहाँ रहने का वह श्रीहरि का वर्तमान उन्होंने सार्थक किया था।

सत्संग के स्तंभ समान संत मुक्तानंदस्वामी विचरण के दौरान सारंगपुर से गुजर रहे थे। उन्हे पता चला कि, श्रीहरि यहीं है। इसलिए वे दर्शन हेतु जीवाखाचर के दरबार में गये।

महाराज ने कहलवाया कि, 'चले जाईये! दर्शन नहीं होंगे।' मुक्तानंदस्वामी तनिक भी उदास नहीं हुए। उन्होंने 'बाळ सनेही रे मोहन मुजने गमता।' ऐसे आठ पद की रचना करके महाराज को भेजा। महाराज उनकी विनययुक्त भावना देखकर प्रसन्न हुए और फिर उनसे

मिले।

ब्रह्मानंदस्वामी करियाणा गाँव में आये। श्रीहरि मकवाणा के घर गुप्तरुप से रहते थे। महाराज ने ब्रह्मानंदस्वामी को भी मना कर दिया। इतना ही नहीं परंतु संदेश लेनेवाले लडके को कहा,'उन्हे धक्के मारकर निकाल दीजिए।' उन्होंने इस अपमान लीला के 'सुनो चतुर सुजाण, एम न घटे रे तमने दिनानाथ ने।' ऐसे चार पद लिखकर भेजे।

फिर महाराज उनसे मिले।

फिर महाराज ने पूछा, 'क्या आप सुखी है न?'

तब ब्रह्मानंदस्वामी ने कहा,'हम रोज जिस गाँव में जाते है वहाँ चंदन, पुष्प और गुलाल से स्वागत होता है अर्थात् मिट्टी, गोबर, पत्थर, धूल आदि से लोग हमारा सन्मान करते है।' ऐसे अपमानों में भी संतो ने श्रीहरि को कभी छोड़ा नहीं।

श्रीहरि गढपुर में हो और संतो गुजरात से दर्शन करने आये हो फिर भी वे उन्हे अपमान करके निकाल देते थे। फिर भी संतो खुश रहते थे। श्रीहरि ने अपने अनन्य सेवक मुलजी ब्रह्मचारी का भी जाहिर में कईबार अपमान किया था। उसमें एक तो अग्नि परीक्षा जैसा प्रसंग बना था। भादरा में मूलजी ब्रह्मचारी श्रीहरि की मोजड़ी को तेल लगा रहे थे। वसराम सुथार ने जबरन से यह सेवा मांग ली। महाराज ने यह देख लिया और वर्णी का अपमान करते हुए कहा,'मैने आपको सेवा सोपी थी तो आपने दूसरों को क्यों दे दिया? जाओ आज से आप विमुख। अब से आप पैर में जुती मत पहनना, मिष्टान्न नहीं खाना।' इसप्रकार कहकर उनको सेवा में से निकाल दिये। ब्रह्मचारी डभाण गाँव में आये। वहाँ रामदास स्वामी को मिले। स्वामी को महाराज के लिए आम भेजना था। उन्होंने ब्रह्मचारी को ले जाने के लिए कहा। ब्रह्मचारी डेढ़ मन आम के वजन का टोकरा सिर पर लेकर गढपुर जाने के लिए चलते हुए निकले और गढपुर आकर महाराज के पास टोकरा रखा, परंतु महाराज ने तो सामने तक नहीं देखा। जय स्वामिनारायण भी नहीं कहा। फिर ब्रह्मचारी गाँव में सत्संगी बाई के घर गये। बाई ने भोजन के लिए सिधा दिया, ब्रह्मचारी ने उसमें से घी-गुड़, आदि निकालकर केवल आटा ही लिया।

बाई ने पूछा, 'घी-गुड़ क्यों निकाल दिये।' तब ब्रह्मचारी ने विस्तार पूर्वक बात करते हुए कहा, 'महाराज ने मुझे छः महिने से निकाल दिया है।'

बाई ने कहा,'चलों, मैं महाराज के पास आती हूँ और महाराज से बात करती हूँ।'

बाई ने महाराज से कहा,'आप इतने निर्दय क्यों हो गये है? ये बेचारे ब्रह्मचारी इतनी दूर से आये है तो आप विवेक के खातिर भी उन्हे जय स्वामिनारायण भी नहीं कर रहे है और आपने उन्हे सेवा में से क्यों निकाल दिये?'

महाराज ने हंसते हुए कहा,'हम कहाँ उनको मना करते है?' फिर ब्रह्मचारी ने आम का

रस निकालकर महाराज को जिमाया और सेवा में वापस जुड़ गये। 'मेरू पर्वत यदि डीग जाये परंतु मुलजी ब्रह्मचारी नहीं डिगे।' जिस प्रकार परमहंसो को मोक्ष की गरज थी उसी प्रकार हरिभक्तों को भी मोक्ष की गरज थी। हरिभक्त शिरोमणी दादाखाचर ने तो श्रीहरि को तन-मन-धन अर्पण कर दिया था। फिर भी श्रीहरि ने उनकी कसौटी करने में कुछ भी बाकी नहीं रखा।

एकबार महाराज दादा से कहे,'मुझे दो हजार रुपये चाहिए।'

दादा ने कहा,'मैं सुबह दूंगा।' महाराज को यह विलंब पसंद नहीं आया। इसलिए वे सुबह जल्दी चार बजे रुठकर चल पड़े। दादा को पता चला तो वे महाराज के पीछे दौड़े और महाराज के पैर पकड़ लिये। महाराज ने अपमान करके उनको पैर से जोर से झटका मारकर दूर फेंक दिये और आगे चल दिये। ऐसा तीनबार हुआ। दादा महाराज को वापस लाने के लिए पैर पकड़ते और महाराज दूर फेंक देंते। फिर महाराज ने आगे चलकर पीछे मुड़कर देखा तो दादा को बहुत चोट लगी थी और वे रो रहे थे और कांप रहे थे। महाराज की परीक्षा में दादा पास हो गये। महाराज ने उन्हे गले लगाया और बोले अब हम आपके वहाँ निरंतर रहेंगे।

इसप्रसंग पर श्रीहरि ने गढडा में कारियाणी के ओढा खाचर से कहा,'हम बिना अपराध दादा का सभा में अपमान करते है तथा 'आप कुछ समझते नहीं है।' ऐसा कहने पर भी उनका मुख प्रफुल्लीत रहता है ऐसे वे अमूल्य हरिभक्त है। वे अपमान होने पर भी उदास नहीं होते। ऐसे संतो-भक्तों हमारे रिस्तेदार है। बिना उनके चाहे भले हमारे साथ में रहते हो फिर भी हमें आनंद नहीं होता।' (हरिचरित्रामृत सागर : 26/19)

वडताल के जोबनपगी ने श्रीजी महाराज से कहा, 'आप अपमान करते हो, फिर भी हम सहन करते है। संत की ओर का दु:ख हमें कभी नहीं लगता, क्योंकि वे हमारे जीव के सच्चे संगी है। ऐसा मानकर हमने प्रीत की है।' (हरिचरित्रामृत सागर : 8/62)

नाथभक्त और उमाभाई दो जन महाराज को पंखे से हवा डाल रहे थे। ये दोनों भक्त ऐसे थे कि, श्रीहरि यदि प्रसन्नता दिखाये या नाराजगी दिखावे फिर भी वे आनंद में रहते थे। उसको भी वे श्रीहरि की कृपा मानकर उदास नहीं होते, हंसते मुंख से रात-दिन सेवा करते रहते। श्रीहरि उन्हे बारबार डाटते फिर भी वे महाराज का दोष ग्रहण नहीं करते। ऐसे भक्त ही महाराज के साथ टीक सकते है। ऐसे भक्त पर भी श्रीहरि की कृपा होती है। (हरिचरित्रामृत सागर : 9/18)

एकबार श्रीहरि ने मांगरोल के आनंदजी संघेडिया की कसौटी लेने के लिए उनको विमुख किया और गाँव के हरिभक्तों से कहा, इनको मंदिर में मत आने देना। मंदिर के दरवाजे पर बैठे उसकी कोई चिंता नहीं, सब जन उनको 'हट कुत्ती' ऐसा कहे। इसप्रकार यह प्रकरण

छः महिने तक चला। महाराज भुज होकर मांगरोल आये तो आनंदजी दरवाजे पर खडे रहकर दर्शन कर रहे थे और दंडवत् कर रहे थे। अपने पहने हुए कपड़ो से हरिभक्तों के जुते साफ करके क्रम में रखते थे। महाराज उनकी गरज देखकर प्रसन्न हुए और उनको वापस सत्संग में लिया।

मानकुआ गाँव के मुखिया आदाभाई का भी महाराज ने अपमान करके कड़ी कसौटी की थी। फिर भी उनको बुरा नहीं लगा था।

गुणातीत परंपरा ने भी अपमान सहन करके चाहे जैसी कठिनाईयों में भी कभी भी पीछे हट नहीं की है।

गुणातीतानंद स्वामी का 1921 की साल में वडलात में भरी सभा में संतो द्वारा अपमान हुआ। बाद में उनको कथा करने का हुआ फिर भी अपमान संबंधीत एक भी शब्द अपनी बातों में आने नहीं दिया। कम समझवाले दूसरे किसी का यदि ऐसा अपमान हुआ होता तो उनको हार्टएटेक आ जाता।

भगतजी महाराज को तो गुणातीतानंद स्वामी ने अपमान प्रुफ बना दिया था। जिससे चाहे जैसी अपमान की परिस्थिति में उनका उत्साह बना रहता था।

अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत के प्रवर्तन हेतु शास्त्रीजी महाराज ने भी अपमान और तिरस्कार सहन किये है।

योगीजी महाराज ने विज्ञानदास के मंडल में सत्रह वर्ष तक सतत गाली–अपमान–तिरस्कार और सखत मार सहन किया है। विज्ञानदास ने तो उनको मार डालने का ही बाकी रखा था।

जोकि, एकबार पहली मंजिल से धक्कामार कर उन्हे नीचे गिरा दिये थे। योगीजीमहाराज ऐसी परिस्थिति में भी अडिग रहे। वे कहते थे कि, 'गुरु ने हमको डांटा तो हम आगे बढ़े।' उनका कोई कोठारी अपमान करे, हरिभक्तों को प्रसाद का पेकेट नहीं देने देते और यदि दिया हो तो हाथ में से वापस छिन लेते फिर भी अलमस्त योगी हमेंशा हंसते रहते थे। उनको तो मजदूर भी डाटते थे। फिर भी वे स्थिर रहते थे।

प्रमुखस्वामी महाराज ने भी अपमान की परिस्थिति में उनकी देहातीत स्थिति और साधुता के दर्शन करवाये है। शास्त्रीजी महाराज की सुवर्णतुला के प्रसंग पर कुछ हरिभक्तों ने नासमझ से स्वामीश्री को बहुत डांटा था। फिर भी उन्होंने हरिभक्तों की महिमा समझकर सबकुछ सहन कर लिया था।

1974 में प्लेन में मुंबई से नैरोबी जाने के लिए निकले थे। स्वामीश्री को नैरोबी में प्लेन में से उतरने नहीं दिया और उसी प्लेन में वापस मुंबई आना पड़ा। इस प्रसंग पर भी उनके मुख की एक भी रेखा बदली नहीं थी। किसी अहंकारी भक्त को पहली पंक्ति में से पीछे

बिठाया जाये तो उसका मुंह बिना प्लास्टिक सर्जरी के बदल जाता है।

कोई एक धार्मिक स्थान पर स्वामीश्री को दर्शन करने जाने से रोका फिर भी तनिक भी उदास हुए बिना हाथ जोड़कर वापस निकल गये। ऐसे अपमान में सामान्य व्यक्ति तो पुलिस केस करने का विचार कर दें।

जिसमें शास्त्री यज्ञपुरुषदास थे वे विज्ञानदास स्वामी के मंडल के साधु भगतजी के लिए स्वेत वस्त्र पहनकर के घूमते थे। जब वे महूवा दर्शन करने आते तब भगतजी कईबार उनका अपमान करके निकाल देते थे फिर भी ये मोक्षभागी संतो को भगतजी के प्रति तनिक भी दुर्भाव नहीं हुआ।

शास्त्रीजी महाराज ने सभा में भाईली गाँव के जीवाभाई का बहुत तिरस्कार किया। फिर भी वे अडिग रहे।

आफ्रिका से अटलादरा मंदिर में सेवा करने आये हुए धर्मज गाँव के पूंजाभाई का भी यदि कोई कुत्सित शब्दों से कोई अपमान करता फिर भी वे प्रसन्न रहते।

एक हरिभक्त ने अपना ट्रेक्टर उत्सव में एक महिने तक सेवा में दिया। उनको उत्सव में कपडे के टेन्ट में सभा मंडप में आवास दिया। फिर भी वे उदास नहीं हुए।

अध्यात्म मार्ग पर अपमान से जो विचलित नहीं हुआ वह तो मानो आधायुग जीत गया।

अब श्रीहरि युद्ध के आगे की परेशानी का वर्णन करते हुए कहते है।

23. देह को सुख हो अथवा दुःख हो

(1) सुख में विचलित हो

एक राजा को संतान नहीं था। इसलिए उसने प्रजा में से किसी एक व्यक्ति को राज्य देने का निश्चित किया। उसने ढिंढोरा पिटवाया कि : 'आज से बराबर एक महिने के बाद मेरे राजसिंहासन से एक मील दूरी से 24 घंटे में दौड़कर जो पहला आयेगा, उसे मुझे राज्य देना है।' ऐसा सरल ढिंढोरा सुनकर आबाल वृद्ध जनता सब तैयार हो गये।

राजा होशियार था। उसने इस महिने के दौरान इस एक मील के विस्तार में एक मोहक नगरी बनायी थी। जिसमें घूमना-फिरना, खाना-पीना, मोज-मजा उडाना आदि विभिन्न आकर्षण खड़े कर दिये। निश्चित समयपर सभी प्रजाजन राज्य लेने के लिए निकल पड़े। परंतु बिच में यह मोहक नगरी देखकर उसमें फंस गये। बच्चे खेल-कूद में युवानों उनके संबंधीत मोज शौक में और वृद्ध मनपसंद खाने-पीने में लग गये।

जिसको जिसमें रुचि थी वह सबकुछ वहाँ उपलब्ध था इसलिए वे उसी स्थान में रुक गये। उनको ऐसा था कि, अभी तो बहुत समय है, इतना उपभोग कर ले बाद में पहुँच जायेंगे। परंतु रमणिय पंचविषय का मार्ग ऐसा है कि, उसमें प्रवेश द्वार है, परंतु बाहर निकलने का द्वार नहीं है अर्थात् उसमें से निकल ही नहीं पता है। 24 घंटे हो गये फिर भी कोई व्यक्ति सिंहासन तक नहीं पहुँची।

सुख सदन की भूल-भुलैया ऐसी ही है। भगवान सुख देते है तो उसमें सुख देनेवाले भगवान को ही भूल जाते है। अहमदाबाद में गुणातीतानंदस्वामी द्विशताब्दी महोत्सव का उत्सव 69 दिन तक चला था। एक भाई अपने बच्चों के साथ वहाँ रोज आता था। लेकिन पहले ही रखी गई बालनगरी में उसका समय पूरा हो जाता था। स्वामीश्री के दर्शन करने तक सभा मंच तक वह पहुँच सका नहीं।

एक हरिभक्त को गुणातीतानंदस्वामी ने अक्षरधाम के दिव्य सुख का वर्णन करके, अक्षरधाम में जाते हुए बिच में आते अन्य लोक के विभिन्न प्रकार के रंग रागवाले सुख का वर्णन किया। तब उस हरिभक्त ने कहा : 'मुझे इस रंग-राग वाले सुख के लोक में रखीये।' ऐसे लोग अक्षरधाम का निशान किस प्रकार ले सके? अक्षरधाम के सीवा जो अन्य धाम में लुभाए नहीं वही सूरवीर भक्त कहलाये।

प्रेमजी सुथार को व्यवहार का दुःख था। इसलिए वह महाराज के साथ हमेंशा घूमता था। महाराज ने उसे कहा, 'तूं कंठी माला बनाने का काम कर, तेरा व्यवहार सुधर जायेगा।' बाद में सभी सत्संगी उसके पास से कंठी-माला लेते थे। उसका व्यवहार बढ़ गया रात-दिन काम चलता। महाराज एकबार उनके गाँव आये। तब वह दर्शन करने नहीं जा सका।

किसी ने सच कहा है कि, 'सुखमां सांभरे सोनी, दुःखमां सांभरे राम।'

एक गाँव में एक सुखी हरिभक्त को सूचना दी कि, स्वामी पधारे है और पंद्रह दिन रुकनेवाले है तो दर्शन करने आना। उसने पूछा : 'फिर कब आनेवाले है।'

सुख में व्यस्त रहनेवाला व्यक्ति यदि पंद्रह दिन में समय न निकाल सके तो स्वामी फिर से आये तो वह कहाँ से आयेगा?

बडौदा के एक हरिभक्त मंगलभाई बिल्कुल दरिद्र थे। मंदिर में सेवा करके दिन गुजारते थे। बाद में गोपालानंदस्वामी के आशीर्वाद से बडौदा राज्य में सुख-समृद्धि पाने के बाद तो वे मंदिर आना भी भूल गये। सत्संग का सुख दैहिक सुख ही माना हो और वह मिल जाये तो मानो सबकुछ मिल जाये। इसप्रकार समझकर सत्संग को इतिश्री करनेवाले अक्षरधाम को कभी नहीं पाते।

(2) सुख में विचलित न हो

जिस भक्तजन के हृदय में दृढ़ निश्चय हो कि, इस शरीर से भगवान के धाम में निवास करना है, परंतु बिच में कहीं लुभाना नहीं है। महाराज ने ऐसे भक्त को शुरवीर कहा है।

सारी संपत्ति दोनों पत्नियों को बांटकर भगवान का साक्षात्कार करने के लिए निकले हुए याज्ञवल्क्य को उनकी एक पत्नी ने मैत्रेयी ने पूछा : 'आप ये सबकुछ छोड़कर भगवान को पाने के लिए जाते है तो मुझे यह सुख नहीं चाहिए। मैं भी आपके साथ में आऊँ?' मैत्रेयी ने भगवान का भजन करने के लिए अच्छे सुख को छोड़ दिये, और कात्यायी को संपत्ति का दोनों हिस्सा मिला, तो वह खुश हो गई।

नचिकेता को यमराजा ने मृत्युजंय विद्या के बदले में ब्रह्मांड का सुख देने को कहा, परंतु वह उसमें लुभाया नहीं। उसकी लगन तो मोक्ष के लिए थी।

प्रहलाद को तो नृसिंह भगवान तीन-लोक का सुख चलाकर देते थे, फिर भी वह उसमें लुभाया नहीं। उसको तो भगवान के सुख पर नजर थी।

जनक और अंबरीष राजा थे फिर भी कथावार्ता, नवधाभक्ति आदि भगवान संबंधी प्रवृत्ति करना तनिक भी चूकते नहीं थे। भर्तुहरि, गोपिचंद जैसे राजा राज्य सुख छोड़कर मंगलयात्रा पर निकल पड़े।

महाराज के एक पत्र पर राजा, महाराज और साहुकार शेठ सबकुछ छोड़कर तुरंत परमहंस हो गये। उन्होंने अलौकिक सुख पाने के लिए लौकिक सुख छोड़ दिया।

धरमपुर की राजमाता कुशलकुंवरबा ने सुख-समृद्धि में भी महाराज की मूर्ति को अखंड धारण करके अक्षरधाम का सुख ले लिया।

गुणातीतानंद स्वामी के नौं लखपति शिष्य बोटाद गाँव के शिवलाल सेठ जो रोज एक घंटा ध्यान करते थे।

शास्त्रीजी महाराज के शिष्य और भारत के दो बार प्रधानमंत्री बन चुके ऐसे भारतरत्न गुलजारीलाल नंदा उनकी प्रातःपूजा और श्रीहरि के रात्रि चेष्टा गान करने का कभी नहीं चूके थे।

चूने की भठ्ठी की सेवा से प्रसन्न हुए गुणातीतानंद स्वामी ने प्रागजी भक्त से कहा : 'जा तूझे साठ हजार रुपये मिलेंगे, घर जाकर सुख से भजन करना।'

परंतु ब्रह्मभठ्ठी में जिन्होंने वासना के बीज जला दिये है ऐसे प्रागजी भक्त ने कहा : 'मैने तैरह वर्ष तक गोपालानंदस्वामी का और नौं वर्ष आपका समागम किया है, परंतु धन-स्त्री में सुख हो ऐसी बात मैने कभी सुनी नहीं है। इसलिए यदि आप सही में प्रसन्न हुए हो तो आपका ज्ञान मुझे दीजिए और आपका घर मुझे दिखाईये कि, आप कहाँ के निवासी है? और मेरे जीव को सत्संगी बनाकर श्रीजीमहाराज मुझ से एक अणुमात्र भी दूर न रहे ऐसे तीन वरदान दीजिए।'

एक हरिभक्त ने स्वामीश्री पर पत्र लिखा कि, 'मेरा धंधा कम चले ऐसा कुछ करे। जिससे मैं सत्संग का पूरा लाभ ले सकुं।' विदेश में हरिभक्तों साधन संपन्न और सुखी है फिर भी रविवार को सभा में नियमित आते है और रविवार की सभा के लिए तो कोई हरिभक्त बहुत बड़ी तनख्वा की नौकरी भी छोड़ देते है।

जिसकी नजर निशान पर है वह तो कदापी महेल में सोता हो फिर भी भगवान और गुरु को भूलता नहीं है।

(3) दुःख में विचलित हो

सामान्य सत्संगी का तो नौकरी-धंधा अच्छा चलता हो, परिवार के सभी सदस्यों का स्वास्थ्य अच्छा हो, अपना नीजी घर हो, लड़के के घर लड़का हो - ऐसे सभी सुखों से सत्संग में आनंद आता होता है, परंतु कवि प्रभुदास द्विवेदी कहते है कि : 'एक सरखा सुखना दिवसो कोईना जाता नथी।' सुख के बाद दुःख का चक्र आ ही जाता है। जब इस दुःख का चक्र आ जाता है तब व्यक्ति दुःखी हो जाता है। कोई सोदाबाज दुःखी सत्संगी ऐसा विचार करे कि, मैने इतना सत्संग किया फिर भी मैं सुखी क्यों नहीं हुआ? मेरे व्यापार में घाटा क्यों गया? मैने इतनी महापूजा करवाई फिर भी मेरा व्यवहारिक प्रश्न अभी तक क्यों नहीं मिटते? ऐसे विचारों में वह फिर किसी ज्योंतिष के पास पहुँच जाता है और शनि की अंगूठी पहनने लग जाता है, कोई वास्तुशास्त्र की सलाह लेकर दुकान के दरवाजे बदलता है, कोई शुक्रवार या शनिवार का व्रत रखता है, श्रीहरि के सीवा अन्य देव-देवता या पीर की मनौति चढ़ाने जाता है। कंठी निकाल देता है। नित्यपूजा बंद कर देता है। अन्य देव-देवता की उपासना करने लगता है, ऐसा हो तब समझे कि, दुःख में यह सत्संगी विचलित हो गया। सुख और

दु:ख सिक्के के दो पहलू है। उसमें निष्ठा बदलनी नहीं चाहिए। यदि मोक्ष के लिए सत्संग किया हो तो किसी भी परिस्थिति में निशान पर से नजर हटे नहीं।

(4) दु:ख में विचलित न हो

भारत की सन्नारी सती सीता पति के पद पदचिन्ह पर चली। वन में कष्ट सहन किये। फिर रावण उठाकर ले गया। लंका में कई दु:ख सहन किये। फिर तो पति रामचन्द्रजी की ओर से ही कसौटी हुई। सतित्व की परीक्षा के लिए अग्नि परीक्षा हुई। लोकापवाद के लिए रामचन्द्रजी ने उनका त्याग किया। ऐसे अनेक दु:खों में भी सीताजी विचलित नहीं हुए। क्योंकि उनका निशान श्रीराम ही था। इसलिए उन्होंने मांगा कि, 'हे राम! जन्मोजन्म आप ही मेरे पति बने, परंतु आपका वियोग कभी न हो।' अनंत दु:खो की भट्टी में पकी हुई द्रौपदी ऐसा कहती कि, 'दुखेन साधवी, लभते सुखानी।' दु:खों में से ही सुख मिलता है।

कुंताजी के लिए दु:खों में से विचलित होने की बात ही नहीं थी। वे तो दु:ख को आवकार देते थे। भागवत् में यह बात है कि : 'विपद: सन्तु न: शश्वत्...' हमें हमेंशा दु:ख ही मिले! इसलिए ही निष्कुलानंद स्वामी ने कहा है कि, 'आगे सीता, कुंता और द्रौपदी धारी धीरज अति मन।' भागवत् के महा दु:खी फिर भी महासुखी ऐसे कदरज ऋषि को बिरदाते हुए मुक्तानंदस्वामी कहते है :

'जुओ कदरज महा दु:खिया काव्या,
ते सुखदु:ख मनमां नव लाव्या,
त्यारे मोहनना मनमां भाव्या।'

कहावत है कि, 'जो पशु मालिक का मार खाये उनको ही गुड़ खाने को मिलता है।'

प्रहलाद को उनके पिता की ओर से भयंकर दु:ख आये फिर भी वे विचलित नहीं हुए। नरसिंह महेता को बहुत दु:ख आये, नागरीजाती ने उनका बहिष्कार किया, पत्नी माणेकबा की मृत्यु हुई, पुत्र शामळशा की मृत्यु हो गई आदि कई दु:खों में भी वे आनंद से गाते थे कि,

'जे गमे जगद्गुरु देव जगदीशने,
ते तणो खरखरो फोक करवो।'

तुकाराम को भी अज्ञानी मनुष्यों ने बहुत दु:ख दिये फिर भी वे सदा आनंद में रहते थे।

श्रीहरि के पांच सौ परमहंस के उपर दु:खों के पहाड तूट पडे थे। पूरा जगत उनसे रुठा हुआ था। जगह जगह पर अपमान, तिरस्कार, मार-पीट सहज हो गया था। कोई कोई तो उनको शरीर पर दाग भी देते थे। खाने का भी कुछ नहीं मिलता था। गुजरात जाते समय नानीबोरु गाँव से बड़ी बोरु के बीच गगनगर बाबा ने संतो की भारी पिटाई की, फिर भी उन्होंने ऊँकार तक नहीं किया। साधुओं में कुछ तो राजपूत और काठी जाती के थे, फिर

भी वे वैरागीयों का मार सहन करते थे। समर्थ होने पर भी सहन करना वह इसे कहते है। इसलिए निष्कुलानंदस्वामी ने गाया है कि :

'ऐवा भक्त ते भक्त हरिना, तेह सहे जग उपहास।

निष्कुलानंद कहे ते विना, बीजा तेनो नावे विश्वास रे॥'

श्रीहरि जिनके दरबार में कई वर्षो तक रहे ऐसे दादाखाचर को भी अनेक दु:ख आये। उनका दरबार गिरवी रख दिया था। खाने के लिए अनाज भी नहीं रहा था। परंतु दादा तनिक भी उन से विचलित नहीं हुआ। एकबार महाराज ने उनके दु:ख से दु:खी होकर उनसे कहा,'दादा! हमारे कारण तूझे दु:ख आता है इसलिए हम कही ओर चले जाये।' तब दादा महाराज के चरण पकड़कर गदगदीत होकर बोले,'आप हैं तो सुख है, वरना संसार में तो केवल दु:ख ही दु:ख है। इसलिए आप हमारे साथ अखंड रहे।'

जेतपुर के कडवी बहन, उदयपुर की रानी जमकुबा आदि को उनके पति की ओर से बहुत दु:ख आये फिर भी उनकी टेक अविचल ही रही।

भादरा के हरिभक्त डोसाभाई दरिद्र थे, रुखी-सुकी रोटी खाते थे। किसी ने उनसे पूछा,'डोसाभाई! आप रुखा-सुका क्यों खाते है?'

तब दु:ख में भी सहजानंदी सुख भुगतनेवाले डोसाभाई ने कहा, 'अरे! रुखा खाये सो हराम खाये, मैं तो महाराज को याद करके खाता हूँ।'

सहजानंदी रस से भरपूर रोटी उन्हे अमृत से भी अधिक मीठी लगती थी। उन्हे दु:ख दिखाई ही नहीं पड़ता था। इसलिए उसमें से विचलित होने का प्रश्न ही कहा रहा?

शास्त्रीजी महाराज के समय में आशाभाई, मोतीभाई आदि हरिभक्तों के सिर पर अनेक गुना कर्ज था। कोई कहते थे कि, 'आप शास्त्री की संगत छोड़ दो वरना आप भीखारी हो जायेंगे। शास्त्री तो बाबा है वह तो भीख मांगकर खायेगा, परंतु आप तो पाटीदार है, आपसे भीख नहीं मांगी जायेगी।' तब ये हरिभक्त उत्साह और उमंग से कहते थे कि, 'चाहे भले भीख मांगना पडे, तो हम भीख मांगेगे परंतु शास्त्रीजी महाराज का संगत नहीं छोड़ेंगे।' उन्होंने तो कवि रणछोड़ भगत की पंक्ति को जीवन में चरितार्थ किया था।

'उपर बांधी नीचे अग्नि सळगावे,

मुशळनो तो मार खाजो रे,

रूडा स्वामीने भजतां।

जे दु:ख थाय ते थाजो रे,

रूडा स्वामीने भजतां।'

भक्त और अभक्त दोनों को दु:ख तो आता ही है, परंतु जो भक्त है वह हंसकर दु:ख को भुगतता है और जो अभक्त है वह रो रोकर दु:ख को भुगतता है। आज भी सत्संग में

कई दु:खी भक्तों है, उनके रिस्तेदार उन्हे किसी न किसी देवी-देवता, पीर या नवग्रह की पूजा या मनौति करने को कहते है, फिर भी वे निष्ठा में से विचलित नहीं होते। किसी को पति की ओर से या परिवार की ओर से परेशानी होती रहती है, सत्संग का विरोध कर रहे हो फिर भी अंतर में दृढ़ निष्ठा रखकर उत्साह से भजन करते है। भगवान भी ऐसे भक्तों के लिए कहते है कि,

'भूखे मारुं भोंय सुवाडुं तननी पाडुं खाल,
एम करतां मने न मूके तो तेने करी दउ न्याल।'

भक्त को न्याल कर देना अर्थात् दुर्लभ अक्षरधाम दे देते है। गुणातीत परंपरा को भी अनेक दु:ख आये है। फिर भी उन्होंने उसे दु:ख ही नहीं माना है। प्रमुखस्वामी महाराज गढपुर मंदिर के निर्माण कार्य हेतु मकराणा में संगमरमर के काम के लिए रहते थे। वहाँ भयंकर धूप, पानी का खूब अभाव आदि परेशानीयाँ सहन की है। सत्संग की वृद्धि के लिए उन्होंने तीनों ऋतुओं के कष्ट सहन किये है। पंद्रह हजार गाँव, ढाई लाख घर, इक्यावन देशो में वनवासीयों की झोपड़ी से लेकर विदेश तक विचरण किया है। उनके विचरण पर तो बड़े बड़े ग्रंथ रचा जाये ऐसा है। उन्होंने सहन किये हुए दु:ख को सुनकर अक्षरधाम का निशान लेनेवाले मुमुक्षुओं को बहुत बल मिलता है, अक्षरधाम का निशान लेने के लिए निकले हुए शुरवीर भक्त की शुरवीरता का श्रीहरि आगे वर्णन कहते है।

24. शरीर रोगी रहो अथवा निरोगी रहो

(1) रोगी शरीर में निशान चूक जाते हैं।

यदि शरीर में कोई छोटा-बड़ा रोग हो जाये और वह दवाई से या संतो की प्रार्थना से भी ना मिटे तो कच्चा सत्संगी अक्षरधाम का निशान चूककर जादू टोने करने लग जाता है। कोई बापू की फूक लेने चला जाता है कोई भोपे के पास पहुँच जाता है या नजर उतारने के लिए चला जाता है। कोई कोई तो रोग मिटाने के लिए निर्दोष पशु-पंछी की बलिदान की मनौति रखते है। स्वयं स्वस्थ हो या न हो परंतु बेचारे निर्दोष प्राणी की मोत होती है। देह की सुखाकारी के लिए ऐसे पापाचरण भी भोपा लोग और तांत्रिक करवाते है।

(2) रोग में भी निशान नहीं चूकते

इस लोक में कहा है कि, 'पहला सुख स्वयं स्वस्थ रहना',परंतु जो शूरवीर भक्त होते हैं वह कभी देह की परवाह ही नहीं करते। देह में से आसक्ति तुडवाने के लिए और हमारी कसर दूर करने के लिए भगवान रोग देते है। पक्का भक्त रोग को भी भगवान की प्रसादी समझकर आनंद से सहन कर लेता है। मुक्तानंदस्वामी को क्षय रोग हुआ था। श्रीजी महाराज ने उस संबंध में गढडा मध्य प्रकरण के 47 वे वचनामृत में कहा है : 'इन मुक्तानंदस्वामी को क्षय रोग हुआ है, वह उन्हे दही, दूध, मिठाई अथवा घी-तेल आदि कोई भी अच्छा पदार्थ खाने नहीं देता। ठीक उसी तरह ज्ञानी पुरुष यही समझता है कि, इस रोग ने तो अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट पदार्थ खाने से बिल्कुल वंचित कर दिया है। इसलिए मानो क्षयरोग के रुप में किसी बड़े सन्त का सत्संग प्राप्त हुआ है। इस प्रकार उसे ऐसे विचार होते है।' मुक्तानंद स्वामी ने इस रोग को 'Blessings in disguise' अर्थात् इस रोग को इष्ट आपत्ति के रूप में स्वीकार कर लिया था।

श्यामडिया चेतानंद स्वामी को हरष का दर्द था उन्हें सुबह में 10 बार दस्त जाना पड़ता था। नित्यानंदस्वामी को एक वर्ष तक आँख का दर्द रहा। सर्वनिवासानंदस्वामी को पांच वर्ष तक शरीर में जलन रहती थी। अद्‌भुतानंदस्वामी की आँख की पुतली बाहर निकल आई थी। दादा खाचर को अंत में 17 निद तक लघुशंका बंद हो गई थी। यह सभी मुक्तों रोग से हारे नहीं, परंतु रोग को भी विचार करता कर दिया कि, 'मैं इन मुक्तों को परेशान नहीं कर सकुंगा।' जेतपुर के कनबी हरजी कापडीया को भारी बुखार आया था। उसकी मां ने एख बाबा को बुलाया। हरजी बेहोश था। तब बाबा हरजी की गुदडी में बुखार डाल कर चला गया। जब हरजी जागे तब उसे इस बात का पता चला। वह बाबा के पीछे दौड़ा और उसे कहे,'मुझे तो एक स्वामिनारायण की ही निष्ठा है यदि बुखार उतारेंगे तो मेरे स्वामिनारायण उतारेंगे तूं क्यों उतारेंगा? ला मेरी बुखार वापस दे दें।' बाबा ने गुदडी वापस कर दी। उसे

ओढकर हरजी सो गया और बुखार वापस आ गई। महाराज को गढडा में इसका पता चला तो महाराज भक्त की निष्ठा देखकर उन्हे दर्शन देने के लिए जेतपुर पधारे। वालेरा वरू का भी ऐसा ही प्रसंग है। उन्होंने भी बाबा को डांटकर गाँव में से भगा दिया था।

रोग से कई लोग विचलित हो जाते हैं, परंतु रोगों को सामने से मांगने वाले भी भक्तों है। जगन्नाथपूरी के पास एक गाँव में माधवदास नामक एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उनके पिता, पत्नी, पुत्र की कालांतर में मृत्यु हो गई। उनकी मां को भयंकर रोग हुआ था। वह मां की सेवा करते थे। मां का दु:ख वे देख नहीं सकते थे। उन्होंने अपनी मां का दु:ख सामने से ही मांग लिया था। बाद में इस असाध्य रोग ग्रस्त होकर समुद्र किनारे पड़े रहते थे। उनके शौचालय में बहुत बदबु आती थी। फिर भी वह भगवान का भजन करते थे। भगवान उनके निष्ठा से प्रसन्न होकर उन्हे दर्शन देकर उनको धाम में लें गये।

शास्त्रीजी महाराज ने भी बडौदा में बुखार मांग लिया था। एक वर्ष तक बुखार रहा था।

नवागाँव (लोलीआना) के डुंगरशीभाई को भी जानलेवा रोग आ गया था। फिरभी आखिरी दम तक वह कथावार्ता करते रहे। कनाडा के तत्कालीन सत्संग प्रमुख भगवानजी भाई मांडवीया को भी अपने असाध्य रोग केंसर का पता चला था। फिर भी अंतिम दम तक सत्संग प्रवृत्ति में जुड़े रहे तनिक भी वह उदास हुए बिना सत्संग करते रहे। होस्पिटल में रहकर भी सदस्यों को स्वामीश्री की सेवा करने की प्रेरणा देते थे। अच्छी सेवा करनेवाले कैनेडा के ऐसे ही दूसरे भक्त उपेन्द्रभाई ओझा वर्षो से डायालीसीस पर थे, फिर भी अखंड आनंद में ही रहते है।

भगवान और संत भी बिमारी को ग्रहण करते हैं। जिससे भक्तों को रोग सहन करने का बल मिलता है। श्रीहरि ने भी बिमारी ग्रहण की थी। शास्त्रीजी महाराज को 75 वर्ष की उम्र में भयंकर गठिये की बिमारी होने पर भी 12 गाँव में विचरण किया था। वे कहते थे कि, 'जब हम पलंग पर लेटेंगे तब हमारा विचरण बंद होगा।'

योगीजी महाराज को भी बहुत सारे रोग थे। फिर भी वह उसकी परवाह नहीं करते थे। बड़ी उम्र में मुंबई में चार चार सीढ़ी चढ़कर पधरावनी करने जाते थे। स्वामीश्री को भी अनेक रोग आते है और जाते है। कई रोग तो हंमेशा के लिए लगे हुए थे। चाहे कैसा भी रोग हो, परंतु पूजा करना, ठाकुरजी के दर्शन करना, मंदिर में जाना उसमें कभी वह पीछे नहीं हटते और चालू बुखार में भी पधरावनी में भी कभी रोक नहीं लगाते। वासद गाँव में 102 डिग्री बुखार में भी और एकादशी का निर्जल उपवास में भी उन्होंने 122 घर पधरावनी की थी। और 1986 में चालू बुखार में भी उन्होंने कच्छ का विचरण चालु रखा था। जामनगर में उनके पैरों में सूजन आ गई थी। फिर भी वह पधरावनी करने गये थे। एकबार हार्टऐटेक, फिर पांच ब्लोक का ओपरेशन, आँख के मोतीबिंद निकाल दिया था। पैरो में गठिया का दर्द,

गोलब्लेडर का ओपरेशन था। पेर में एक बड़ी गांठ का ओपरेशन आदि रोगों के साथ 85 वर्ष की उम्र में भी विचरण चालु था।

एकबार भक्तों ने स्वामीश्री से कहा बापा, 'आप का रोग हमको दीजिए।' तब स्वामीश्री ने कहा, 'आप सभी इस रोग से परेशान हो उसकी अपेक्षा मैं अकेला ही परेशान हूँ वह क्या गलत है ?'

जो शूरवीर भक्त होते है, वह चाहे जैसे रोग में भी अपना निशान नहीं चूकते।

(3) निरोगी शरीर में भी निशान चूक जाते है।

निरोगी शरीर वाले मौजशोख में पड़ जाते है और शरीर को बनाने में ही समय निकालते है। वह शरीर को बनाने में भी कथावार्ता, भजन, भक्ति ऐसा सत्द्वंग संबंधी एक भी अंग नहीं बनाते है। निशान चूके हुए ऐसे निरोगीयों को चेतावनी देते हुए सुभाषित ने कहा है कि,

'यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयोनायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥'

जब तक शरीर निरोगी है और वृद्धावस्था दूर है और ईन्द्रियों तेज है तब तक बुद्धिशाली मनुष्य को भगवान का भजन कर लेना चाहिए। बाद में जब शरीर बिल्कुल शीथिल हो जायेगा, तब 'आग लगने के बाद कुआँ खोदने जैसी बात है।' उसे ध्यान में रखें।

(4) निरोगी निशान चूकते नहीं।

श्रीहरि के समय में कई कितने युवा बाईभाई हरिभक्तो ने श्रीहरि के चरणो में जीवन समर्पित करके अपनी युवानी उज्वल बनाई।

पर्वतभाई खेत में काम कर रहे थे। उस समय उनके पैर में कुल्हाडी लगती हुई रह गई। उन्होंने सोचा, 'यदि कुल्हाडी लगी होती तो मुझे 6 महिने तक खटिये में पड़ा रहना पडता। दूसरा कोई काम नहीं होता यह तो महाराज ने रक्षा की है इसलिए 6 महिने गढपुर में जाकर महाराज का सत्संग करो।' इस प्रकार मन को समझाकर वह समागम में रहे। स्वस्थ शरीर में ऐसे विचार मोक्षभागी को ही आता है। आज भी निरोगी युवाओं देश विदेश की सुख समृद्धि छोड़कर अक्षरधामरुपी निशान लेने के लिए साधु होने आते हैं। ऐसे ही कई हरिभक्त उत्साह से सत्संग करते हैं। अब महाराज अक्षरधाम का निशान लेने के लिए निकले हुए शूरवीर भक्तों को आखिरी खेल का वर्णन करते हुए कहते है कि, निशान लेने में यह शरीर जीवित रहे या मर जाये। आईये इस खेल को हम देखें।

25. शरीर जीवित रहे या मर जाएँ

शेक्सपीयर ने 'As you like it.' नामक उनके नाटक में कहा है कि, 'जीवन तो एक रंगमंच है हम उनके पात्र है। एक ओर से प्रवेश करते है और अपनी अपनी भूमिका प्रस्तुत करके दूसरी ओर निकल जाते है।' ये क्या कोई जीवन है ?

टी.एस. इलियट के शब्दों में 'Where is the life, we lost in living.' यह तो केवल पशु-पंछी जीते है, उस प्रकार जीवन जीया कहलाये। 'Grave is not the goal of life.' खा-पीकर केवल मर जाना वह जीवन का लक्ष्य नहीं है। देवानंदस्वामी ऐसे लोगों के लिए कहते है: 'भज्यों नहीं भगवान, मूरख जीवतां मूओ।' रावण, कंस, शिशुपाल आदि ने भगवान का भजन नहीं किया, परंतु भगवान के सामने विरोध करके मूरख के सरदार की पंक्ति में बैठ गये। ऐसे लोगों के लिए गीता में कहा है : 'मोघं पार्थ स जीवति!' वे जींदे होने पर भी मरे हुए है।

महाराज गढडा अंत्य-30 में कहते है कि, 'एक दिन सबको मर जाना है, परंतु भगवान की भक्ति करना ही जीवन का सबसे बड़ा लाभ है।' इसलिए एक एक पल अक्षरधामरुपी निशान लेने के लिए जीना वही जीवन है। कबीरदासजी ने कहा है कि,

'सुखियो सब संसार, खावे ने सोवे,
दु:खियो दास कबीर, जब जागे तब रोवे।'

रामकृष्ण परमहंस जब सुबह जागे तब आक्रंद कर रहे थे कि : 'हे मां! आज का दिन भी तेरे दर्शन बिना का गया।' इसलिए ही कहा गया है कि, 'आपने कितना जीया वह महत्त्व का नहीं है, परंतु किसप्रकार जीवन व्यतित किया वह महत्त्व का है।' क्योंकि 'We live in deeds, not in years.'

हम सत्कर्मो में जीवन जीते है, पशु की तरह वर्षो में नहीं जीते है।

एक गाँव में मनुष्य ने कितना समय भजन-भक्ति में बिताया उस समय का जोड़ लगाया अर्थात् 'लेखे में सोई घडी गणी, बाकी के दिन बाद।' उस संख्या के अंक को स्मशान के सूचना पट पर आयु लिखी जाती थी। ऐसा जीवन जीनेवाले नरसिंह, मीरा, एकनाथ आदि मरने के बाद भी लोक हृदय में जीवीत थे। ये सब मरकर भी जी गये और अन्य मर गये।

इस शरीर से परम पद का पंथ कितना कटा उसकी जॉच करें।

ईसाई धर्म के प्रचारको ने अपने धर्म के पचार को ही जीवन का लक्ष्य बनाकर जीवन समर्पित कर दिये है। अपना वतन छोड़कर विश्व के कोने कोने में, आफ्रिका के घने जंगलो में भी जीवन भर घूमे है, लिविंग्स्टन, रोड्झ आदि की तो वही पर ही कबर हो गई है।

श्रीहरि के परमहंसो ने श्रीहरि को प्रसन्न करने का निशान लेकर उनकी ही आज्ञा से लोगों के जीवन सुधारने के लिए उन्हे मोक्ष मार्ग पर चढ़ाने के लिए कई परेशानीयों के बीच विचरण

किया। इसके लिए अपमान, तिरस्कार, मारपीट आदि सबकुछ सहन करना पड़ता था। फिर भी वे पीछे हटे नहीं। एकबार बाबाओं ने उनकी भारी पीटाई की, तब श्रीहरि की आँख लाल हो गई थी, परंतु क्षमा की मूर्ति के समान इन संतो ने महाराज से कहा,'बूरा बूराई न तजे, तो भला भलाई क्यों तजे ? चाहे भले उन्होंने हमको मारा परंतु आप उनको क्षमा करना।'

ये परमहंस जब भजन में बैठते तब यदि कोई बार नींद आ जाये तो पालथी मारकर पैर पर चक्की का पैया रखते और खूंटी पर अपनी चोटी बांधते।

कई हरिभक्तों आयु का धर्मदान निकालकर प्रति वर्ष एक महिना गुणातीतानदस्वामी का समागम करने के लिए जूनागढ़ जाते थे।

भगतजी को तो अखंड जागृकता और कौएँ की तरह नींद लेते थे। उनकी एक एक पल महाराज के साक्षात्कार हेतु निशान पर थी, तो केवल तीन ही वर्ष में वे निशान तक पहुँच गये। जिस प्रकार कोई सिंहनी का दूध दोह ले उस प्रकार गुणातीतानंदस्वामी को सशरीर प्रसन्न करके महाराज का अखंड साक्षात्कार कर लिया।

आफ्रिका के मगनभाई को शास्त्रीजी महाराज का योग हुआ तब से वे अखंड भजनभक्ति और कथावार्ता में मग्न रहते। 'जिसे भगवान और भगवान के संत की प्राप्ति हुई है, उसे जीवीत तो भगवान के कथाकीर्तन करते हुए ही दिन रात बितते है।' श्रीहरि के यह वचन (ग.म.66) उन्होंने मानो सिद्ध किया था।

गंगासती ने पानबाई को बीजली के चमकने पर मोती पीरो लेने की बात कहकर मनुष्यदेह से भगवान का भजन कर लेने का उपदेश दिया है। मुक्तानंदस्वामी भी जीवनसंग्राम की पलो का वर्णन करते हुए कहते है :

'अवसर आवीयो रण रमवा तणो,
अति अमूल्य नव मळे नाणे,
समजवुं होय तो समजजो सानमां,
तजी परपंच तक जोई टाणे।'

सचमुच, देह के अस्तित्व का यही लाभ है। मनुष्यदेह वही बड़ा अवसर है। इसलिए सद्गुरु के इशारे को समझकर इस देह से भगवान का भजन कर लेना।

शरीर की मृत्यु हो :

मुक्तानंद स्वामी शूरवीर भक्त का वर्णन करते हुए कहते है :

'धीर धुरंधरा शूर साचा खरा,
मरणनो भय ते मनमां न आणे।'

अपना जान हथेली में लेकर परम पद के मार्ग पर चलनेवाले को कभी भय नहीं होता

है। प्रहलाद ऐसा ही भक्त था। तो उसके पिता ने मारने के लिए अनेक प्रयास किये। फिर भी वह पीछे नहीं हटा।

इष्टदेव का संदेश फैलाना वह भी साधना का एक अंग है। बुद्ध के शिष्य पूर्ण को परंत देश में प्रचार के लिए जाने का आदेश हुआ। किसी ने उसे कहा,'उस देश में जाने जैसा नहीं है। वहाँ के लोग तुझे गालियाँ देंगे।'

पूर्ण ने कहा,'मारेंगे तो नहीं न?'

तब डर बतानेवाले ने कहा,'मारेंगे ऐसा नहीं मार ही डालेंगे।' तब पूर्ण ने कहा, 'फिर तो मैं ऐसा समझुंगा की बुद्ध का संदेश फैलाने में मेरा शरीर काम आ गया।'

भगवान के लिए ऐसी मर मिटने की तैयारी हो वही अक्षरधाम का निशान ले सकता है।

केरल प्रदेश में प्रचार के लिए 48 पादरीओं को आदिवासीओ ने एक के बाद एक मार दिया था। जब 49 वाँ पादरी वहाँ गया, तब आदिवासी के मुखिये ने उससे कहा,'किस लिए मरने आया है?' पादरी ने कहा,'ईसु क्रिस्ट का संदेश फैलाने आया हूँ।' पादरीयों के बलिदान से आज केरल प्रदेश में बड़ी संख्या में ख्रिस्तीओं है।

श्रीहरि के परमहंस हीरानंद को द्वेषीयों ने 'स्वामिनारायण नाम' छोड़ देने के लिए पूरे शरीर पर दाग दिये थे। फिर भी उन्होंने स्वामिनारायण का नाम नहीं छोड़ा था। कई परमहंसो को तो द्वेषीयों ने जान से मार दिये थे। फिर भी मरते दम तक उन्होंने स्वामिनारायण नाम नहीं छोड़ा।

जामनगर के नजदिक जगा गाँव के पास मेड़ी गाँव का बालक सत्संगी हुआ था, परंतु उसका पिता हिरण्यकशिपु जैसा था। उसने बालक को सत्संग छोड़ने के लिए पैर बांधकर कुएँ में उल्टा कुएँ में डाला। फिर भी बालक ने स्वामिनारायण का नाम रटना चालू रखा। वह कहे,'ए लडके स्वामिनारायण का नाम छोड़ दें, वरना तूझे मार डालूंगा।' बालक ने कहा,'पिताजी! एक ही बार मरना है, परंतु मैं स्वामिनारायण का नाम नहीं छोडूंगा।' आखिर उस बालक को बैलगाड़ी में बांधकर गले में फंदा देकर बालक को मार दिया। बालक स्वामिनारायण नाम बोलता हुआ धाम में गया। प्रहलाद की तो भगवान ने रक्षा की परंतु इस बालक की तो रक्षा नहीं हुई फिर भी उसने भजन नहीं छोड़ा।

अहमदाबाद के डोसा भाई सत्संगी हुए। उनके रिस्तेदारों ने उन्हे जिन्दा कबर में गाड़ दिया। जोकि महाराज ने उनकी रक्षा की, परंतु उसे मृत्यु का डर ही नहीं था।

सुंदरीयाणा के प्रतिष्ठित सत्संगी हिमराजशा के पुत्रों ने सत्संग नहीं छोड़ा इसलिए उनके जातिवालों ने उनका बहिष्कार किया। उस समय में बहिष्कृत होना वह मृत्यु से भी बड़ी सजा थी। वे अडिग रहे।

बदलपुर के नाथाभाई को सर्पदंश हुआ। किसी ने उनसे भाथीजी के स्थान पर ले जाने

के लिए कहा। नाथाभाई ने कहा,'मुझे शास्त्रीजी महाराज ने कंठी पहनाई है। मेरी निष्ठा को बदलना नहीं।' ऐसा बोलते हुए स्वामिनारायण का भजन करते हुए धाम में चले गये। प्रभु के ऐसे मतवाले भक्तों की रीत का वर्णन करते मुक्तानंदस्वामी कहते है कि,

'शीश आप्या विना श्याम रीझे नहीं,
शीश अरपे जे कोई शरण ईच्छे।'

विवेकानंदस्वामी की दूसरी विदेशयात्रा के समय कुछ विदेशी युवानों उनके साथ देश में आये। उन्होंने दीक्षा लेने की इच्छा बताई। तब विवेकानंदस्वामी ने कहा,'यदि मैं तुम्हे बाघ या ज़हरीले सांप का सामना करने का कहूँ या गंगा में गिरकर मगर को पकड़ने का कहूँ या आसाम में किसी चाय के बगीचे में कुली के रुप में जीवनभर काम करने के लिए आपको बेंचने की इच्छा रखूं या आपके हित की इच्छा रखकर आपको भूखे मारुं या अग्नि में गिरने को कहूँ। तो ऐसी मेरी आज्ञा के पालन के लिए क्या आप तैयार है? यदि तुम्हारी 'हां' तो मैं तुम्हे दीक्षा दूंगा।'

इसलिए प्रीतमदास कवि ने इस मार्ग को 'प्रेमपंथ पावक की ज्वाला' कहा है। इसमें तो जलकर के जीना है। केवल पानी छाटकर हरी महेंदी कभी लाल नहीं होती, परंतु 'रंग लाती है हीना पीस जाने के बाद।'और किसी ने सच कहा है कि,

'जला दे अपनी हस्ती को, अगर कुछ मरतबा चाहे,
दाना खाक में मिलकर, गुले गुलझार होता है।'

मरके जीना अर्थात् अक्षरधाम में ब्रह्ममय शरीर पाकर महाराज की सेवा प्राप्त करना। जीवन संग्राम में दोषों के सामने लडते हुए कोई मैदान छोड़े बिना, मैदान में ही मरा तो भगवान उनकी शूरवीरता देखकर प्रसन्न होते है और दूसरे जन्म में उन्हे अपना या अपने धारक संत का योग दिलाता है। क्योंकि 'भक्त बीज पलटे नहीं, जो जाये जुग अनंत।'

गीता में भी कहा है कि 'नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।' (6/40) अर्थात् मोक्ष के मार्ग पर चलनेवाले की कभी दुर्गति नहीं होती।

अनंत जन्मों से जीव अक्षरधामरुपी निशान लेने के लिए दौडते है, परंतु भगवान की माया में सभी उलझ जाते है, परंतु महाराज कहते है कि, 'जो शूरवीर भक्त हो, ऐसे भक्तजनों के हृदय में यही एक दृढ़ निश्चय होता है कि, इस देह के द्वारा भगवान के धाम में ही निवास करना है, परंतु बीच में कहीं भी आसक्त नहीं होना है।'

महाराज कहते है कि, 'जबकि कायर और देहाभिमानी जो भगवद्भक्त हैं, उन्हे भगवान के भजन में हजारों तरह के संकल्प-विकल्प होते रहते हैं कि, 'यदि कठोर व्रत-नियम का पालन करना होगा, तो हम सत्संग में नहीं रह पाएँगे, तथा पालन करने में सह्य, आसान नियम होंगे तो टिक जाएंगे।' ऐसे लोग यह भी सोचने लगते हैं कि, अगर ऐसा उपाय करेंगे,

तो संसार में भी सुखी होंगे और यदि सत्संग में टिक गए, तो धीरे धीरे सत्संग में भी निभते चलेंगे।' ऐसे भक्तों को कायर ही समझना चाहिए तथा वे भगवान के धाम का निशान नहीं ले सकते।

इसलिए मुक्तानंद स्वामी कहते है :

'जे जे विचारीने जुक्ति करवा जशे,

ते ज कायरपणुं नाम का'वे।'

जो कायर होता है वह दूसरों के आगे ढीली बात करता है कि, धाम में गये हुए किसी की क्या कभी चिट्ठी आई है ? इसलिए हमें मरने की कोई जरुरत नहीं है। हम से जितना हो उतना करें। परंतु जो शूरवीर भक्त होता है वह तो पींड ब्रह्मांड संबंधीत कोई चिंता नहीं करता है। फिर निष्कुलानंदस्वामी कहते है कि,

'शूरा संतनी रीत एक सरखी करवो वेरीनो विनाश,

काम, क्रोध, लोभ, मोह जीती, भावे भजवा अविनाश।'

श्रीहरि ने हिंदुधर्म की कई कुप्रथाएँ दूर की थी। अंहिसक यज्ञ शुरु करवाये थे। अंधश्रद्धाओं को दूर किया और कनक कामिनी के त्यागी संतो बनाये थे। उनकी यह धार्मिक क्रांति वामाचारी ब्राह्मण, भोपे, और गंजेरी, भंगेरी बाबा को पसंद नहीं था। इसलिए वे उसका विरोध करते थे। स्वामिनारायण संप्रदाय को हिंदु धर्म से अलग नया धर्म मानते थे। जो सत्संगी होता उसे जाति से बाहर किया जाता था और परमहंसो की मार-पिटाई करके मार डालते थे। द्वेषीयों की ऐसी बहुत परेशानीयाँ थी फिर भी जले हुए घाव पर दाग देना उस प्रकार श्रीहरि ने साधुओं के धर्मनियम का स्थायी बंधारण पूर्व परमहंसो की कसौटी करने के लिए 114 जितने प्रकरण बनाये थे। अलौकिक राज को प्रसन्न करके अक्षरधाम का निशान लेने निकले हुए ये परमहंस इस कसौटी में भी पीछे नहीं हटे। 114 कड़े नियमों में वे कुछ नियम तो तलवार के धार पर चलने जैसा कठिन था। मुक्तानंद स्वामी ने इस मार्ग का वर्णन करते हुए लिखा है कि,

'धार तलवारनी सोयली चपळ छे,

वचननी टेक ते विकट जाणो।'

निशान लेने की ठान लेनेवाले ये परमहंस श्रीहरि के वचनरुपी कठीन मार्ग पर उत्साह से चलते थे। इस कठिन नियमों में कुछ नियम देखें।

❖ मन जो चाहे वह नहीं देना।

❖ रात को जंगल में एक दूसरों के शब्द न सुनाई दे उस प्रकार रहना।

❖ घास के ढेर आदि का सहारा नहीं लना।

❖ शराब नहीं पीना, मांस नहीं खाना, चोरी नहीं करना, व्यभिचार नहीं करना और आचार

विचार शुद्ध रखना, ऐसे शुद्ध पंच वर्तमान रखें। रोज पांच व्यक्ति को वर्तमान धारण करवाने के बाद ही भोजन करें।

❖ शर्दी के मौसम में पानी में बैठना, शरीर में खूजली आने पर खुजलाना नहीं।

❖ शरीर पर सांप, बिच्छु यदि चढ़ जाये तो बैठे रहना।

❖ पलक नहीं झबकाना।

❖ बैलगाड़ी आदि वाहन पर नहीं बैठना।

❖ जहाँ अच्छी भिक्षा मिले वहाँ फिर से नहीं जाना।

❖ मुशळस्नान करें अर्थात् स्नान करते समय शरीर पर हाथ नहीं फिराना।

❖ गाँव के कुत्ते की आवाज सुनाई न दे इतनी दूरी पर जंगल में सोना।

❖ टाट (बोरी) पहनना।

❖ यदि स्त्री का लाल वस्त्र दिखाई दे तो उपवास करना।

❖ यदि भिक्षा में हरि इच्छा से जो मिल जाये उसका गोला बनाकर एकबार खाना।

❖ पाव सेर अनाज को पानी में भीगोकर निरस करके एकबार खाना। अर्थात् अनाज से भरी हुई झोली नदी में डूबोकर उस अन्न पर चींटी भी न चढ़े ऐसा निरस करके खाना।

❖ देश में सत्संग प्रचार हेतु जिस गाँव में जाने का हो, वहाँ यदि सन्मान हो तब उस गाँव को छोड़कर चले जाना।

❖ किसी प्रकार का औषध नहीं खाना।

❖ बिना बिछाये जमीन पर सोना।

❖ सोने के बाद यदि जाग जाये तो फिर से सोना नहीं।

❖ कर पत्तर और उदर झोली रखना अर्थात् (हाथ का कटोरा और पेट की झोली बनाये।)

❖ एक कोपीन पहनकर रहना।

श्रीहरि के ऐसे प्रकरणों में कोई अल्पकालिन तो कोई दिर्घकालिन थे। ये प्रकरण समयांतर में बदलते रहते। दूर-दूर विचरण करते संतो को कईबार प्रकरण बदलने का समाचार तक नहीं मिलते, फिर भी वे चालु प्रकरण से उबकर महाराज को प्रकरण बदलने का पूछते भी नहीं। उत्साह से जो प्रकरण चालू हो उसके अनुसार रहते थे।

एकबार महाराज का आदेश आया कि, 'अभी तो इससे भी कड़े नियम आनेवाले है।' यह सुनकर मुक्तानंदस्वामी ने पहले से ही तैयारी के रुप में नीम का रस पीने का चालू कर दिया।

ऐसे प्रकरणों से हार मानकर कुछ परमहंस तो मंडल में से निकल जाते थे। उसे एकडमल कहा जाता था, फिर भी उन्हे श्रीहरि का निश्चय जीव में दृढ़ रहता था। वे जहाँ जहाँ जाते, वहाँ पर श्रीहरि की ही महिमा गाते थे। रोज पांच व्यक्ति को पंचव्रत देकर बाद में भोजन लेते। संतो को यदि पांच व्यक्ति न मिले तो दो-चार दिन तक लगातार उपवास होते थे, फिर भी

वे उत्साह से लगे रहते थे। महाराज को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने कहलवाया कि, 'सुबह से शाम तक मुमुक्षु की खोज करे, प्रयत्न करें, और यदि कोई मुमुक्षु न मिले तो हरे वृक्ष आदि को जीव मानकर शाम को उन्हे पंच वर्तमान धारण करवाकर भोजन करें।'

श्रीजीमहाराज का संदेश फैलाने की परमहंसो को कैसी लगन थी?

आत्मानंदस्वामी मुशळस्नान करते थे। उनके शरीर पर बाल खूब थे, इसलिए शर्दी में शरीर फट गया और उसमें कीड़े पड़े। कीड़े उभरने लगे। यदि कीड़े उभरकर बाहर गिर जाये तो स्वामी कहते कि, 'अरे बाहर कहाँ जाता है? तेरा खुराक को अंदर है।' ऐसा कहकर स्वामी कीडे को वापस अंदर रखते।

क्या देह का अनादर!

एकबार भादरा गाँव की सीमा पर एक परमहंस सोये हुए थे। रात को बड़ी ठंड गिरने से उनका शरीर अचेतन हो गया और वे बेहोश हो गये। सुबह एक चरवाहा ने उन्हे मरा हुआ जानकर मूलजीभाई को उनकी देहक्रिया करने के लिए सोपा। मुलजीभाई ने देखा संत मर नहीं गये है जबकि ठंडी से ठर गये है। वे उन्हे अपने घर पर लाये और मुंग बिछाकर उसपर उन्हे सुलाया। कुछ देर के बाद गर्मी लगने से वे होश में आये और अपने आप को घर में सोते हुए देखकर तुरंत खड़े हो गये और वापस सीमा पर चले गये।

महाराज को प्रसन्न करने की उन्हे कितनी लगन थी।

1969 के अकाल में स्वरूपानंदस्वामी का साठ संतो का मंडल महाराज की आज्ञा से जामनगर गया था। वहाँ लखोटा तालाब के पास बरगद के पेड़ के नीचे वे रहते थे। गाँव में से भिक्षा मांगकर लाते और बाद में सिर पर ओढकर बड़ के नीचे ध्यान करते। गाँव में आणदाबाबा का सदाव्रत चल रहा था। महाराज को संतो की कसौटी करना था इसलिए वहाँ से भिक्षा लेने के लिए मना किया था। कईबार गाँव में भिक्षा नहीं मिलती। संतो को दो-चार दिन के उपवास भी होते थे। छोटे संत तालाब की मिट्टी की पपड़ी या काछिया लोगों ने फेंक दिये सब्जी के पीले पत्ते खाने के लिए लालाहित होते थे। स्वरूपानंदस्वामी ने यह परिस्थिति देखकर महाराज को पत्र लिखा। महाराज ने सामने से होंसला बढ़ाता हुआ पत्र लिखा। एक जंगल में एक महात्मा का समागम करने के लिए तीन मुमुक्षुओं आते थे। उनमें से एक केवल महात्मा के लिए आनेवाले चावल को साफ करने पर बाहर उड़े हुए चावल के टूकड़े खाकर समागम करता था। दूसरा चावल पकाने के बाद उसका पानी पीकर रहता था और तीसरा महात्मा के भोजन के बाद उनके हाथ धोये हुए पानी को पीकर समागम करता था। फिर चौथा मुमुक्षु आया उनके लिए खाने के लिए कुछ नहीं बचा तो वह वायु पीकर महात्मा का समागम करता। आपको तो अभी तालाब की मिट्टी की पपड़ी और सब्जी के पत्ते तो मिलते है न! यह पत्र स्वरूपानंदस्वामी ने संतो के आगे पढ़ा और संतो में होंसला आ गया और वे

बोले,'अब तो चाहे भले हम मर जाये, फिर भी पपड़ी और पत्ते भी खाने नहीं है।'

फिर एकबार तालाब के कीनारे घूमने निकले जामसाहब ने इन निर्व्यसनी और ध्यानी साधुओं को देखकर उनका गुण आया और महल में भिक्षा लेने के लिए आने को कहा। तीन दिन महल में से भिक्षा में मिष्टान्न और नमकीन पाकर सभी साधु को तो तृप्ति हो गई। तब स्वरूपानंदस्वामी ने संतो से कहा,'संतो, महाराज की आज्ञा याद करों। यहाँ अच्छी भिक्षा मिल रही है और सन्मान भी मिल रहा है इसलिए हमें यहाँ से चले जाना चाहिए।'

सुभाषित में लिखा है कि, 'तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः कांचनं कान्तवर्णम्।'

स्वर्ण को त्यों त्यों अधिक तपावे त्यों त्यों उसमें अधिक चमक आती है। संतो की साधुता का तेज इस कसौटी में विशेष चमक रहा था।

टाट पहनने के प्रकरण में ब्रह्मानंदस्वामी ने महाराज से कहा कि, 'यदि नाखून जितनी पृथ्वी में आपके सिवा अन्य कोई भगवान होता तो मैं वहाँ चला जाता। इसलिए मुझे तो आप कहो ऐसा ही करना है।'

महाराज के सिवा अन्यत्र कहीं मोक्ष नहीं है ऐसा माननेवाले संतो ऐसी कड़ी कसौटी में उत्साह से पार उतर गये। उनको बिरदाते हुए मुक्तानंदस्वामी लिखते है कि,

'अडग संग्रामने समे ऊभा रहे, अर्पवा शीश आनंद मनमां,
चाकरी सुफळ करवा तणे कारणे, विकस्युं वदन उमंग तनमां,
शूर संग्रामने देखता नव डगे, देखता नव डगे,
डगे तेने स्वप्ने सुख न होये।'

लोंगफेलोने सत्य कहा है :

'Heights by great men,
reached and kept.
not by a sudden fight,
but when their companions slept,
were toiling upwards in the night.'

निशान अचानक नहीं ले सकते परंतु जब कायर लोग सोये हुए रहते है तब निशान लेने के प्रयास करनेवाले शूरवीरों रात-दिन निशान की ओर कुच करते रहते है।

मोह का सैन्य महाविकट है, उसे देखते कवि, गुणी, पंडीत सभी भागते है, क्योंकि मोहदल के मुखिया शूरवीरों को डरा दे ऐसा है। वे मुखिया कौन है? तो मुक्तानंदस्वामी कहते है कि,

'काम, ने क्रोध मद मोह दळमां मुखी, लडवा तणो नव लाग लागे,
जोगिया जंगम त्यागी तपसी घणां, मोरचे गये धर्मद्वार मागे।

पाखरीया नर ते कैं पाड्या खरा, शृंगी शशी सुरराज जेवा।'

इस मुखियाओं ने कैसे कैसे महारथी को मार गिराया है ? शिव, ब्रह्मा, ईन्द्र, चंद्र, रावण, सौभरी, पराशर आदि को काम-दोष ने परास्त कर दिये है। दुर्वासा आदि क्रोध के गुलाम थे। वशिष्ट आदि को लोभ ने कलंक लगाया है। एकलश्रृंगी आदि कईयों की इस मोहदल ने लाज लिया है।

मुक्तानंद स्वामी कहते है :

'ज्यां लगी देहने हुं करी मानशे,

त्यां लगी भोगविलास भावे।'

मोह का मूल देहभाव है।

गीता में कहा है :

'यततो ह्यपि कौन्तेय पुरूषस्य विपश्चितः।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥' (2/60)

'हे कौन्तेय! इन्द्रिया ऐसी मंथन करनेवाली है कि, निग्रह करने का प्रयत्न करते विद्वान पुरुष के मन को भी वह विषयों की ओर जबरन से खींच जाते है।'

मोक्ष के मार्ग में चलनेवाले नारदजी जैसे शूरवीर भक्तों ने भी मोह के दल के पास हार मान लिया है। इसलिए देवानंदस्वामी कहते है कि,

'बृहस्पति जेवाने भोळव्या, माया मनमा मगरुर,

डाह्यां पीलाणां दाढ्यमां, चावी कीधां चकचूर।'

इस मोह की सैना को जीतने का उपाय देवानंदस्वामी ने इस पद की ध्रुव पंक्ति में बताया है :

'सेवो साचा हरिसंत ने।'

साक्षात् हरि अथवा जिनमें हरि अखंड रहे है ऐसे गुणातीत संत की सहाय से ही मोह की सैना को जीत सकते है।

संत को शूरवीर का पद दिया गया है, परंतु मुक्तानंद स्वामी कहते है कि,

'शूरने संतमां अंतर अति घणो,

सूरज संग खद्योतशोभा।'

क्योंकि,

'शूरने एक पळ काम आवी पडे,

मरे कां मोज लई सुख पामे।'

शूरवीर को एकबार मरना है, जबकि श्रीहरि की सहायता से मोह की सैना को मारने के लिए निकले हुए संत को तो मन के साथ लडाई में प्रत्येक पल पर मरना है।

इसप्रकार मन के साथ लडते हुए संत के लिए कहते है कि,

'संत संग्रामथी पळ न पाछो हटे,

मन दमवा तणे चडे भामे।'

और कहते है,

'हांजी भला शूरा, जगमांही संत,

मन बलवंत जीते सोही शूरा।'

ऐसे ही एक मनोजित शूरा संत का प्रसंग देखें।

कडु गाँव के कल्याणदास श्रीहरि को प्रसन्न करने के लिए साधु होने के लिए मींढळ सहीत निकल गये थे। महाराज ने उनकी ऐसी अद्‌भुत शूरवीरता देखकर, प्रसन्न होकर दीक्षा देकर उनका नाम 'अद्‌भुतानंद' रखा था। महाराज की आज्ञा से वे एकबार महाराष्ट्र के खानदेश प्राप्त में मुमुक्षुओं को सत्संग कराने के लिए विचरण कर रहे थे। संत को हरपल मोहमाया के सामने युद्ध करना रहता है। ऐसा प्रसंग उनको इस विचरण के दौरान हुआ था। इस समय महाराज ने सिर्फ एक कोपीन पहनकर रहने का नियम चलाया था। स्वामी कुंजबारी गाँव में आये। राजा ने स्वामी का रुप देखकर अपनी दो कन्या को उनके साथ शादी करवाकर दो गाँव देने का आयोजन किया। स्वामी को इस बात का पता चला, इसलिए वे श्रीहरि को याद करके इस माया को लांघकर रात को ही चल निकले। इसी प्रवास में धूलिया गाँव के पास मेघी गाँव में अतितबाबाजी ने अपनी दो कन्या को इस स्वामी को दिखाया। कन्याएँ स्वामी से शादी करने के लिए तैयार हो गई। स्वामीने सोचा कि, अभी एक राज्य का बंधन छोटा तो यह दूसरा बंधन आकर खड़ा हो गया। यहाँ से भी वे निकल गये। बाद में वे महाराज को लोज में मिले। उन्होंने महाराज को सारी बात बताई। महाराज ने प्रसन्न होकर भरी सभा में उन्हे खड़ा करके उनकी प्रशंसा करते हुए कहा,'जिस माया ने शिव, ब्रह्मा आदि की लाज ली है, वह महाबलवंती माया को लात माकर स्वामी यहाँ अणीशुद्ध आये है। इसलिए उनका वैराग्य तो जिस प्रकार लडाई हुई हो और उसमें जो उत्साह से लड़े हो उनकी छाती में घाव हुआ हो इसप्रकार शोभायमान है।' मुक्तानंदस्वामी ने ऐसे संत के लिए लिखा है कि,

'मुक्तानंद ते संतनी आगळे,

मोहने मन करे त्राय तोबा!'

26. वह गुरुदेव तो तेरे साथ है :

श्रीहरि ने गढडा अंत्य-26 में भगवान के समान सेवा करने योग्य संत के लक्षण बताते हुए कहा है कि, 'जो सन्त इन्द्रियों तथा अन्त:करण आदि मायिक गुणों की क्रियाओं को दबाकर बरतते हों, किन्तु उनकी क्रियाओं से स्वयं कभी नहीं दबते हों, यानी पराभूत नहीं होते हों, और भगवान सम्बंधी क्रिया को ही करते रहते हों, तथा पंचव्रतों का दृढ़तापूर्वक पालन करते हों, तथा स्वयं को ब्रह्मरूप मानते हों और पुरुषोत्तम भगवान की उपासना करते हों, ऐसे संत को मनुष्य सदृश नहीं जानना और देव सदृश भी नहीं मानना। और ऐसे सन्त मनुष्य होने पर भी भगवान के समान सेवा करने योग्य हैं।'

ऐसे माया पर शूरवीर प्रकट गुरुहरि संत मिले और उनकी कसौटी सहन करे, उनका मन-कर्म-वचन से संग करे तो वे हमें मायापर होने की रीत बताकर अक्षरधामरूपी निशान तक पहुँचा देते है। अर्थात् जीवन मुक्त कर देते है। इसलिए मुक्तानंदस्वामी ने गाया है कि,

'मुक्तानंद ए अगम रस अतिगणो,
सद्गुरु मोज थी सुगम सौम्य।'

बकरी को दोहना आसान है, परंतु गुरु को प्रसन्न करना वह तो सिंहनी को दोहने जैसा कठिन काम है। भगवानरुपी मोज लेने को निकले हुए शिष्य की गुरु पहले तो कड़ी कसौटी करते है। उसमें पार लग जाये बाद में ही गुरु उसे अक्षरधामरुपी निशान लेने की रीत बताते है।

एक शिष्य गुरु की कसौटी से उब गया था। एकबार गुरु ने उसे मटकी लेकर नदी में पानी भरने भेजा। शिष्य ने सौचा कि, यह अच्छा मौका है। यहाँ से सीधा ही भाग जाये वह मटकी नदी कीनारे पर रखकर भागने जाता था इतने में उसे आवाज सुनाई दी : 'खडा रह, खड़ा रह।' उसको लगा कि, 'कौन उसे खड़े रहने को कहता है?' तब उसने देखा कि, मटकी बोल रही थी। वह खड़ा रह गया। मटकी ने कहा,'बस, गुरु की इतनी सी कसौटी में तूं थक गया? तूं मेरी कहानी सुन! मैं पूर्वकाल में मेरे रिस्तेदार के साथ जंगल में आनंद से रहती थी। वहाँ एक कुम्हार आया। 'कुदालेन विदारीता वसुमती' उसने कुदाली से मेरे रिस्तेदारों से मुझे अलग कर दिया। 'पश्चात् खरारोहणम्' फिर मुझे गधे पर बिठाई। घर लाकर मेरी पिटाई करके मेरी कमर तोड़ दी। बाद में पानी छिडककर 'यत्पापीष्टकुलालपादहननम्' उस पापी कुम्हार ने मुझे पैर से कुचल डाली। फिर मेरा पींड बनाकर मुझे चक्कर पर चढ़ाई। 'दंडेन चक्रभ्रमम्।' डंडे से चक्कर को घुमाया। मेरा तो सिर फिर गया। फिर मेरा ऐसा आकार बनाकर 'रज्वा छेदनम्' डोरी से काटकर मुझे चक्कर से नीचे उतारी। मुझे थोड़ी शांति हुई इतने में तो 'ताडनम्' अंदर और बाहर से मेरे पूरे शरीर की पीटाई की। फिर तो मुझे आग में डाल दी। 'दहनम्' किया फिर तो मेरा पूरा रंग ही बदल गया। 'यन्मेऽपि सह्यं मया' मैने बिना

बोले सहनकर लिया। आखिर में मुझे फिर से झोले में भरकर बाजार में बेचने ले गया। वहाँ भी 'ग्रामस्त्रीकरटंकणं बहु कृतम्।' गाँव की स्त्रियों ने 'मैं कच्ची हूँ या पक्की' वह देखने के लिए मेरे सिर पर टकोरे मारे। 'तन्मेऽपि दुःखं महत्।' मुझे बहुत दुःख हुआ। आखिर तेरे गुरु ने मुझे पसंद किया और मैं गुरु की मटकी बन गई। और तेरे जैसे ब्रह्मचारी के मस्तक पर बैठने का मुझे सौभाग्य मिला। यह सौभाग्य प्राप्त करने से पहले मेरी जैसी कसौटी हुई वैसी तेरी कहाँ हुई है?'

मटकी की कथा सुनकर शिष्य में बल आ गया। फिर मटकी को नमस्कार करके उसे सिर पर चढ़ाकर ब्रह्मघाट पाने के लिए वापस आश्रम में गुरु के पास आया।

बौद्ध धर्म की तमाम शाखाएँ जिसे महायोगी मानते है वह मिला रेपा। सन् 1052 में तिबत में हो गये। उन्होंने योगविद्या सिखने के लिए गुरु की कैसी कसौटी सहन किया उसे सहन करें। योगविद्या सिखने के लिए गुरु मारपा के पास गया। गुरु ने उसकी कसौटी करना चालु किया। गुरु ने उसे एक गोल मकान बनाने की आज्ञा दी। पत्थर लकड़ी आदि स्वयं को ही लाना था। किसी की कोई मदद नहीं लेनी थी। मिला रेपा अपनी पीठ पर पत्थर उठाकर लाते थे। उसके निर्माण के लिए पानी भी दूर से भरकर लाता था। आधा मकान हुआ और गुरु ने कहा,'ये मकान नहीं चलेगा। इसे तोड़ दो।' पत्थर आदि जहाँ से लाया था वहाँ जाकर रखकर आओं। बाद में दूसरा दूज के चांद जैसा आकार का मकान बनाने को कहा। वह भी आधा होने पर पहले की तरह उसको भी तूडवा दिया। बाद में तीसरा त्रिकोण आकार का मकान बनाने को कहा। वह भी आधा होते ही तूडवा दिया। बाद में चौथा मकान एक टेकरी पर चोरस आकार का नौ मंजिल का बनाने की आज्ञा दी। वह दो मंजिल का हुआ बाद में गुरु को पता चला कि, किसी ने उसे पत्थर लाने में मदद की है। इसलिए वह मकान भी तूड़वा दिया। पांचवाँ मकान बारह खंभेवाला बनाने को कहा। वह भी पूरा होने आया तब वह गुरु के पास ज्ञान की दीक्षा लेने गया। तब गुरु ने उसके बाल पकड़कर खींचा और लात मारकर कहा : 'क्या मुफ्त में शिक्षा लेना है?' पीठ पर पत्थर लाने से पीठ छील गई थी। गुरुपत्नी को दया आई। उसने मारपा से कहा, 'आपको अब इसे ज्ञान देना चाहिए।' गुरु ने कहा,'वैसे तो कई घोड़े और गधे की पीठ पर छाले पड़ने से सड़ जाती है, यह कोई दुःख नहीं है।' मीला रेपा ऐसी अनेक कसौटी में से हस्तेमुख से गुजर रहा था और फलस्वरुप गुरु की प्रसन्नता पाकर योगविद्या सीखी।

गुरु के वचन में इसप्रकार रहनेवाले शिष्यों के लिए यथार्थ कहा है कि :

'वचन प्रमाणे तेनी पेठे वर्तता, एक पग धर उभा ज सुके।'

पंजाब में आनंदपूर में सन् 1698 वैशाखी पूर्णिमा के उत्सव पर गुरु गोविंदसिंह के सभी अनुयायी उत्साह से उपस्थित रहे थे। खचाखच सभा भरी हुई थी। उसमें गुरु गोविंदसिंह ने

चुनौती दिया कि, 'मुझे सिर का बलिदान चाहिए। है कोई तैयार?' भरी सभा में सन्नाटा छा गया। कुछ तो रफूचक्कर हो गये। कुछ तो नीचे मुंडी रखकर बैठे रहे। एक व्यक्ति मस्तक देने के लिए तैयार हुआ। गुरु उसे तंबू में ले गये। बाद में खूनवाली तलवार से बलिदान देने के लिए दूसरे शिष्य का आहवान किया। इसप्रकार एक के बाद एक ऐसे पांच व्यक्ति तैयार हुए। आखिर गुरु गोविंदसिंहजी माता ने यह परिक्षा बंद करवाई। उन्होंने तंबू में पहले से बकरे बांधकर रखे थे। बलिदान देने को आये हुए शिष्यो के बदले में बकरे के सिर काटते थे। बाद में गुरु इन पांचो शिष्यों को अच्छे वस्त्र पहनाकर तंबु से बाहर लाये और उनको 'पंच प्यारे' के नाम से बधाई दी। इस परीक्षा के दौरान जो भाग गये थे, वे मनमुख कहलाये। जो बैठे रहे थे वे सन्मुख कहलाये। और जो सिर देने के लिए तैयार हुए वह गुरुमुख कहलाये।

जिस प्रकार जो शुरवीर हो वह मस्तक के बिना रण में फिरता है। उसी प्रकार ऐसे गुरुमुखी शिष्य गुरु को मस्तक सोपकर गुरु की प्रसन्नता पाकर सुखी बनता है।

प्रमुखस्वामी महाराज के अमृत महोत्सव पर मुंबई में आये हुए हवाई टापू के शिव मंदिर के महंत पूज्य शिवाय सुब्रमण्यम् सभा में साधना की गुरुचाबी बताते हुए कहा, 'obey your guru. obey your guru. obey your guru.' आप अपने गुरु के वचन में रहीये। इसप्रकार तीन बार कहा था।

महादेवभाई देसाई गांधीजी के अंतेवासी सेवक थे। गांधीजी उनका कईबार अपमान कर बैठते थे। 'यदि आपको चले जाना हो तो चले जाईये।' ऐसा भी कह देते थे। फिर भी गांधीजी को समर्पित महादेवभाई ने अपने जीवन के अंत तक गांधीजी का साथ नहीं छोड़ा। इसलिए ही उनके लिए कहा गया है कि,'अग्निकुंड में उगा हुआ गुलाब।'

कठिन कसौटी में से गुजरे हुए शिष्य के उपर गुरु की प्रसन्नता होती है और गुरु उन्हे मोह का सैन्य जितने का उपाय बताते है। शिष्य को भी बल रहता है कि, 'गुरु मेरे साथ है।' इसलिए उनकी सहाय और कृपा से मैं जरुर जंग जीत जाउंगा।

इसलिए मुक्तानंदस्वामी हिम्मत देते हुए कहते है कि, 'वह गुरुदेव तो तेरी ओर है।'

27. गुरुमुखी जोगिया जुगती जाणे

मुक्तानंदस्वामी सिंधुड़ा बजाते हुए कहते है कि,

'ऐवा अरि सैन्यशुं अडीखम आथडे,
गुरुमुखी जोगिया जुक्ति जाणे,
मुक्तानंद मोह फोज मार्या पछी,
अटल सुख अखंड पदराज माणे।'

जो गुरुमुखी है उसे गुरुमोह का सैन्य जितने की युक्ति बताते है और शिष्य उस प्रकार रहकर मोह की खोजकर मारकर पदराज ऐसे अक्षरधाम का अखंड सुख प्राप्त करता है। गुरु की मोज के रुप में गोविंद को प्राप्त करता है।

क्रोध हो और उपवास करने लगे, इसप्रकार अपने मनमाने साधन कई साधक करते है, परंतु इससे मोह दल का नाश नहीं होता। परंतु मुक्तानंदस्वामी मनमानी छोड़ने का उपदेश देते है :

'मेल मन ताण ग्रह वचन गुरुदेवनुं,
सेव तुं रुप ए शुद्ध साचुं,
मनमत्त थईने तुं कोटि साधन करे,
सद्गुरु शब्द विण सर्वे काचुं।
तीर्थने व्रतनुं जोर पण त्यां लगी,
गुरुगम विण उपाय काचो।'

एक व्यक्ति पर बहुत मक्खियाँ बैठी। वह तो परेशान हो गया और घबराकर बोलने लगा : 'अरे! मैं अकेला और इतनी सारी मक्खी? अब मेरा क्या होगा?' किसी अनुभवी ने कहा,'अरे भला आदमी! उसमें क्यों घबराता है। तेरा हाथ हिला।' उसने हाथ हिलाया और सारी मक्खीयाँ उड़ गई। गुरु हमें दोष जीतने सचोट उपाय बताते है।

इसलिए श्रीमद् राजचंद्रजी ने आत्मसिद्धि में कहा है कि,

'मानादिक शत्रु महान, निज छंदे न मराय,
जाता सद्गुरु शरणमां, अल्प प्रयासे जाय।'

इस विधान की पुष्टि में स्वामीश्री ने सारंगपुर में सन् 1997 की 10 अक्टूबर को बात कही थी कि, 'गुरु जैसा कहे वैसा करे तो शत्रु को जल्दी जीता जा सकता है। कार्तिकेय का चक्रावा मीट जाता है। थोड़ा करने पर ज्यादा हो जाता है। बिना गुरु के लडाई न करें। वरना ब्रहस्पति आदि जैसा हो जाये। वे हार गये और उपर से कलंक भी लगा। सांप-सीड़ी के खेल में एक पासा गलत पड़ जाये तो वापस सर्प के मुंख से पूछ तक सून्य में आ जाते है। पहले जहाँ थे वहीं पर वापस आ जाता है। इसलिए बिना गुरु के मार्गदर्शन दोष दूर नहीं होते।'

गुरु गुणातीतानंदस्वामी ने उपेन्द्रानंदस्वामी को धर्मशाला में गोबर से लेपन करवाकर उनका काम-दोष मिटा दिया था। महुवा में साधु को कुएँ में से पानी निकालकर स्नान करवाने की सेवा करवाकर सोनी भगत की वासना मिटा दी। शत्रुओं के सामने लड़ने के लिए सैन्य में सरदार अलग अलग व्युह रचना करता है। इसलिए सैनिकों को लड़ने का सरल हो जाता है।

युद्ध में रथी, महारथी और अतिरथी होते है, परंतु उनकी सुरक्षा के लिए उनका सारथी बराबर होना चाहिए। कर्ण ने अपने सारथी शल्य से पूछा, 'यदि मैं मर जाउं तो तूं क्या करेंगा ?'

शल्य ने कहा,'मैं मेरे देश में वापस चला जाउँगा।' अर्जुन ने कृष्ण से पूछा, 'यदि मैं मर जाउं तो आप क्या करेंगे ?' श्रीकृष्ण ने कहा, 'मैं तुझे मरने ही नहीं दूंगा।' अच्छा सारथी रथी को संभालता है, इसलिए ही अर्जुन ने युद्ध में यादवों की विशाल नारायणी सैना के बदले नि:शस्त्र कृष्ण को सारथी के रुप में पसंद किया था।

कुरुक्षेत्र में युद्ध से पूर्व ही एक विकट प्रसंग खड़ा हो गया था। पांडवों और कौरव सैना आमने सामने खड़ी हो गई थी। दोनों पक्ष में रणशींगा बजते थे। शंखनाद हो रहे थे। अर्जुन बहुत उत्साह में था। उसने पूछा, 'मुझे किसके साथ लड़ना है ? वह बराबर देख सके इसलिए उसने श्रीकृष्ण को अपना रथ दो सेना के बीच ले जाने का आदेश दिया।' उसने दोनों सेना में एक दूसरों के सामने लड़ने के लिए उपस्थित हुए अपने स्वजनों और मित्रों को देखा, उसको हुआ कि : 'क्या मुझे इन सभी को मारना है ?' इस विचार से वह मोहवश हो गया, उसके शरीर के अंग ढिले हो गये, उसका मुंह सुखने लगा, शरीर कांपने लगा, हाथ में से धनुष गीर गया और एकदम हतोत्साह होकर बोला, 'मुझे लड़ना नहीं है।' ऐसा कहकर रथ के पीछे जाकर बैठ गया। यह देखकर कृष्ण ने कहा,'कलैब्यं मा स्म गम: पार्थ' हे अर्जुन! तुझे युद्ध के समय में यह मोह कहाँ से उत्पन्न हुआ ? तुझे ये शोभा नहीं देता। हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता को छोड़कर तूं खड़ा हो जा। इसप्रकार बहुत उपदेश देकर श्रीकृष्ण भगवान ने उसे युद्ध करने के लिए खड़ा किया। श्रीकृष्ण के इस शब्दों से अर्जुन में बल आ गया। और श्रीकृष्ण का विश्वरुप देखकर उसे विश्वास हो गया कि, मैं तो निमित्त मात्र हूँ, युद्ध में सच्चा बल तो श्रीकृष्ण का है।

बिना सरदार का सैन्य हार मान लेता है। अंतिम विजय तक सरदार साथ में ही होना चाहिए। जबकि युद्ध में कपट रीत से अभीमन्यु की मृत्यु हुई तब फिर से अर्जुन हतोत्साह हो गया था, तब श्रीकृष्ण ने फिर से उन्हे उपदेश देकर खड़ा किया था।

जीवन संग्राम में बारबार हताशा, निराशा आ जाती है, तब प्रत्येक पल प्रकट गुरु अवश्य होने चाहिए।

'सात दिन में मेरी मृत्यु होगी।' इस विचार से घबराये हुए परिक्षीत को गुरु सुकदेवजी मिले और उसे सात दिन भागवत् कथा सुनाकर उसका देहभाव तोड़ दिया। और उसे ब्रह्म और परब्रह्म का ज्ञान देकर भयमुक्त कर दिया।

विवेकानंद स्वामी को शिकागो की धर्म परिसद में प्रवचन के समय गुरु रामकृष्ण के स्मरण से बहुत हिम्मत आ गई थी।

आधुनिक युग के युवकों को मोह के सैन्य के सामने लड़ना भारी कठिन था, परंतु योगीजी महाराज सिंधुड़ा बजाकर बलभरी बातें करते थे। बाते सुनकर युवकों को बल आ जाता था कि, योगीजी महाराज जैसे हमारे शुरवीर सरदार है तो स्वामी की सेना में हमें जुड़ जाना चाहिए।

नेपोलियन जब उसके लश्कर में निकलता तब उसके सैनिकों में दस हजार गुना बल बढ़ जाता था। शूरवीर सरदार का यही प्रभाव है, परंतु जिसका सरदार ही अंध हो उसकी सैना कुएँ में ही गिरती है।

योगीजीमहाराज तो लोमडी जैसे को शेर जैसा बनाते और कायर को बहादूर बनाते थे। वे शिष्यों के दोष मिटाकर उन्हे शूरवीर भक्त बनाते थे।

प्रमुखस्वामी महाराज ने आज आदिवासी से लेकर विदेशी अनेक अबालवृद्धों को अक्षरधामरूपी निशान लेने के लिए तैयार किये है। सभी प्राचिन और अर्वाचिन व्यसनों के सामने गुरु के बल पर लडाई लेकर इन शत्रुओं को जितकर निशान की ओर उत्साह से आगे बढ़ा रहे है।

इसके अनुसंधान में श्रीहरि ने गढडा प्रथम 70 वे वचनामृत में दो सैना की अद्‌भुत बलभरी बात बताई है वह देखे। श्रीहरि कहते है कि, 'जिस प्रकार कुरुक्षेत्र में कौरवों तथा पांडवों की सेनाएँ एक-दूसरे के सामने खड़ी हुई थी। उनके बीच युद्ध में तीर, बरछिया, आदि शस्त्रों का उपयोग किया गया। उस समय कुछ योद्धा आमने-सामने तलवारें और कतिपय वीरपुरुष गदाएँ लेकर, तो कुछ सैनिक गुत्थम-गुत्था लड़ रहे थे। उस स्थिति में किसी का सिर उड़ गया, तो किसी की जाँघ कट गयी, ऐसा भीषण रक्तपात हुआ था। उसी प्रकार इस जीलव के अन्त:करण में भी जो कुसंग के भाव हैं, वे पंचविषयरूपी शस्त्रों को लेकर खड़े हैं तथा सन्त के जो भाव हैं, वे भी 'भगवान सत्य हैं, जगत मिथ्या हैं तथा विषय झूठे हैं', इन शब्दरूपी शस्त्रों से सज्जित होकर खड़े हैं और इन दोनों प्रकार के शब्दों का आपस में युद्ध होता है। सो जब कुसंगी का बल बढ़ जाता है, तब विषयों के भोगने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है, तथा जब सन्त का बल बढ़ता है, तब विषयोपभोग की इच्छा नहीं होती। इस प्रकार परस्पर अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है।

इसलिए , कहा गया है :

'यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम॥'

इस लोक में बताया गया है कि, 'जहाँ पर योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण है और धनुषधारी अर्जुन है, वहीं लक्ष्मी है, वहीं विजय है, वहीं ऐश्वर्य है और वहीं अचल नीति बनी रहती है। इस तरह जिसके पक्ष में यह संतमंडल है उसी की विजय होगा, ऐसा निश्चय रखना।'

तब काकाभाई ने पुनः पूछा,'हे महाराज! भीतर जो सन्त बैठे है, उनका बल बढ़े तथा कुसंगी की शक्ति कम हो, उसका क्या उपाय है?'

तब श्रीजीमहाराज बोले कि,'अन्तःकरण में और बाहर जो कुसंग रहता है, वे दोनों एक हैं तथा हृदय में और बाहर जो संत रहते हैं, वे भी एक हैं। अंतर में रहनेवाले कुसंगी का बल बाहरवाले कुसंगी के पोषण से बढ़ता है, और अंतर में निवास करनेवाले सन्त का बल तभी बढ़ता है, जब बाहरवाले सन्त से उसे पोषण प्राप्त होता हो। इसलिए, बाहर के कुसंगियों का संग न करके बाहर के जो सन्त हैं, उन्हीं का सत्संग करें तभी कुसंगियों का बल कम हो जाता है, तथा सन्त के बल में वृद्धि होती है।' इस प्रकार श्रीजीमहाराज ने प्रश्न का उत्तर दिया।

काकाभाई ने पुनः यह प्रश्न पूछा,'हे महाराज! एक पुरुष तो ऐसा है, जिसके लिए कुसंगियों का संघर्ष समाप्त हो गया है और केवल सन्त का बल प्राप्त है तथा एक अन्य पुरुष भी है, जिसका संघर्ष ज्यों का त्यों चलता रहता है। इस स्थिति में, इन दोनों में जिसका संघर्ष समाप्त हो गया है, उसके मरने पर उसे भगवान के धाम की प्राप्ति होती है, इस बात में तो कोई सन्देह नहीं है, परंतु जिसका संघर्ष पूर्ववत् चल रहा है, उसका देहान्त होने पर उसकी कैसी गति होती है, यह बताईए।'

तब श्रीजीमहाराज बोले,'जैसे एक योद्धा जब युद्ध करने के लिए निकला, तब उसके समक्ष बनिये अथवा गरीब लोग आए उन्हें जीत लिया, तब उसे भी विजय कहा जायेगा। ठीक उसी तरह दूसरा योद्धा युद्ध करने गया, तब उसके सामने आरबों की सेना आई तथा राजपूत, काठी और कोली जैसे योद्धा आए, उन्हे जीतना कठिन ही है। वे कोई बनियों जैसे थोड़े ही हैं, जिन पर तुरन्त विजय पा ली जाए। इस प्रकार वह योद्धा उनके साथ बस संघर्षरत ही रहता है। उनमें कदाचित् जीता तो जीत ही गया। परंतु अगर जो लड़ते-लड़ते शत्रु द्वारा खदेड़े जाने पर भी नहीं हटा, तथा आयुष्य समाप्त होने के कारण अगर वह मर भी गया, तो क्या उसका स्वामी यह बात नहीं जानेगा कि, 'इसका मुकाबला बड़े-बड़े बलवान लोगों से हुआ था, जिन्हे जीता नहीं जा सकता था। तथा जो पहला योद्धा था वह बनिये आदि को जीता था। वह वाकई आसान काम था।' इस प्रकार, दोनों योद्धाओं पर उनके स्वामी की नज़र रहती है। उसी प्रकार भगवान भी नज़र रखते हैं कि, 'इन्हें ऐसे प्रबल संकल्प-विकल्पों के विघ्न हैं, फिर भी उनके साथ लड़ाई लड़ता रहा है, इसलिए यह धन्य है।' इसप्रकार भगवान

उसकी सहायता करते हैं। अत: बेफिक्र रहना, किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं करना, भगवान का भजन करते रहना, सन्त का अधिक से अधिक सत्संग करना और कुसंगी से दूर रहना।' इस प्रकार श्रीजीमहाराज प्रसन्न होकर बोल रहे थे।

इस वचनामृत में महाराज ने हमें अच्छा साथ बंधाया है और इसके साथ संत का सत्संग अधिक रखने का अनुरोध भी किया है। हमारे सौभाग्य से श्रीहरि के धारण सर्वगुण संपन्न गुणातीत गुरु प्रमुखस्वामी महाराज का सत्संग प्राप्त हुआ है। इसलिए हमें विश्वास है कि, इसी शरीर से ही अक्षरधामरुपी निशान अवश्य लेंगे। फिर भी अधिक बल के लिए उनकी कृपा चाहते हुए उनको ही प्रार्थना करते रहे।

'जीवनना संग्रामे जो जो जाउ ना हुं हारी'

बी.ए.पी.एस.स्वामिनारायण संस्था

प्रेरक : परम पूज्य महंतस्वामी महाराज

प्रमुखस्वामी महाराज शताब्दी महोत्सव
1921-2021

1819-2019 वचनामृत द्विशताब्दी महोत्सव

युवा अधिवेशन 2019

निबंध प्रतियोगीता

पुस्तक : चलो चले हम अक्षरधाम

तृतीय खंड : सुखप्राप्ति के सोलह सोपान

(वचनामृत गढडा अंत्य प्रकरण - 24 पर चिंतन)

सत्संग प्रवृत्ति मध्यस्थ कार्यालय

33. पूर्व भूमिका

असेव्य की सेवा करना उत्तम सेवा है। ऐसे व्यक्ति की सेवा जीवन का लाभ है। अक्षर आदि सभी, परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण की सेवा करते हैं। शिक्षापत्री में कहा है : 'तत्र ब्रह्मात्मना कृष्णसेवा मुक्तिश्च गम्यताम' (121) अर्थात् ब्रह्मरूप होकर अक्षरधाम में परब्रह्म की सेवा करना ही मुक्ति है।

पृथ्वी पर भगवान से संबंधित-थाल, आरती, मंदिर में बर्तन धोना, फूलों का हार बनाना, रसोई तैयार करनी ऐसे अनेकों सेवाएँ है। परंतु अक्षरधाम में किस प्रकार की सेवा होगी?

योगीजी महाराज कहते थे कि, 'अक्षरधाम में भगवान के सामने देखकर भगवान का सुख लेना वह सेवा है।' चकोर पक्षी जैसे चन्द्रमा को एकटक देखता रहता है वैसे ही सेवा में कुछ भी मुश्किल नहीं है, केवल आनंद ही आनंद है।

इस सेवा की प्राप्ति कैसे हो? जैसे कलेक्टर होकर के सेवा करने के लिए आईएएस होना पड़ता है, वैसे ही पुरुषोत्तम की सेवा करने के लिए ब्रह्मरूप होना पड़ता है। इसलिए तो श्रीहरि लोया-7 के वचनामृत में कहते हैं कि, जो ब्रह्मरूप होता है उसे पुरूषोत्तम की भक्ति का अधिकार है।

इस संदर्भ में मुक्तानंदस्वामी श्रीहरि से प्रश्न पूछते है : 'भगवान का भक्त अक्षरधाम में भगवान की सेवा में रहता है तो ऐसी सेवा की प्राप्ति का साधन क्या है?'

जहाँ निरंतर रहना है और जहाँ से कभी वापस नहीं आना है, ऐसे पति के घर जाती हुई नव वधु के लिए भी कहा गया है :

'कर ले सिंगार चतुर अलबेली, साजन के घर जाना होगा,
नहा ले, धो ले, बाल संवार ले, फिर वहाँ से नहीं आना होगा।'

पति की सेवा के लिए नव वधु सोलह श्रृंगार करती है।

इसी तरह परमपति पुरुषोत्तम की अखंड सेवा में रहने के लिए भी सोलह श्रृंगार करके सज कर जाना चाहिए। वह श्रृंगार क्या है? तो जहाँ जाकर कभी वापस नहीं आना ऐसे अक्षरधाम में ब्रह्मरूप होकर सेवा की प्राप्ति के सोलह श्रृंगार रूपी साधन श्रीहरि कहते है :

(1) श्रद्धा (2) स्वधर्म (3) वैराग्य (4) सर्वप्रकार से ईन्द्रियों का नियंत्रण (5) अहिंसा (6) ब्रह्मचर्य (7) साधु का संग (8) आत्मनिष्ठा (9) महात्मज्ञानयुक्त भगवान की दृढ़ भक्ति (10) संतोष (11) दम्भरहित (12) दया (13) तप (14) सम्पूर्ण गुणवान ऐसा बड़ा भगवान का भक्त जिसके साथ गुरुभाव से व्यवहार करना (15) ऐसे अन्य अपने बराबरी के भगवान के भक्त के साथ मित्रभाव रखना। (16) अपने से छोटे जो भगवान के भक्त के साथ शिष्यभाव रखकर उसका हितचिंतन करना, उसकी सहायता करनी। इस तरह यह सोलह साधन करने से भगवान का एकांतिक भक्त जो अक्षरधाम में भगवान की सेवा

की प्राप्ति करता है।

चन्द्र पर जाना हो तो उसकी तैयारी पृथ्वी पर ही हो जाती है। इस तैयारी में कोई भी प्रकार की ढील नहीं होनी चाहिए। कहावत है कि : 'बिना निश्चित योजना के उडान भरने से गिरने में देर नहीं लगती।'

34. संत समागम - सबसे श्रेष्ठ साधन

ये सोलह साधन यहीं सिद्ध करने हैं। इन सोलह साधनों में सातवाँ साधन-संत समागम की विशेषता बताते हुए योगीजी महाराज कहते हैं : यह साधन द्वारा गोलोक में जाना है? नहीं अक्षरधाम में जाना है। सोलह साधनों में श्रेष्ठ साधन सातवाँ साधन है। साधु का समागम। साधु नियम-धर्म का अनुसरण सिखाते हैं। कुसंग से दूर रखते हैं। यह सत्संग की बहुत बड़ी बात है। जूनागढ़ में सभी स्वामी का समागम करने बहुत जाते थे। महुवा में भगतजी महाराज का समागम करने जाते थे।

मुक्तानंद स्वामी ने भी संत समागम की महिमा गायी है :

जी रे संत-समागमथी टळे, आशा-तृष्णा रे (2)
ईर्षा अभिमान, मोह मत्सर ममता बळे,
प्रगटे उरमां रे (2) प्रभुनुं दृढ़ ज्ञान।
संत-समागम कीजीए...
जी रे संत-समागमथी थया, मुनि नारद रे (2)
हरिनुं मन आप, अनेक पतित उद्धारिया,
तेना जशनो रे (2) मोटो परताप।
संत-समागम कीजीए...

यह संत समागम मन, कर्म और वचन द्वारा करना है, नहीं तो अज्ञान वैसा का वैसा ही रह जायेगा। इस संत समागम की बहुत बड़ी महिमा है, तो केवल सातवें साधन करने से ही क्या नहीं चलेगा? अन्य 15 साधनों की फिर क्या आवश्यकता है?

मोटरकार में मशीन ही मुख्य है, फिर भी ब्रेक, लाईट भी आवश्यक है। ठीक वैसे ही संत समागम मुख्य साधन है और अन्य 15 साधन उपकरणों की जगह हैं। विमान के दो पंख होते हैं, वैसे ही अक्षरधाम में जाने के लिए मुख्य साधनरूप संत के दो पंख - उपासना और आज्ञा बलवान होने चाहिए। उपासना के पंख के विषय में गुणातीतानंद स्वामी कहते हैं : 'महाराज को पुरुषोत्तम जाने बिना अक्षरधाम में नहीं जा सकते।' (स्वामी की बात : 3/12)

जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति को सर्वोपरी कहती है, उसमें किसी और स्त्री के पति का द्रोह नहीं होता, वैसे ही अपने इष्टदेव को सर्वोपरी कहने से किसी अवतार का भी द्रोह नहीं होता है। फिर भी अधिकतर परमहंसो महाराज को अन्य अवतारों जैसा मानते थे।

पलाणा के भाईलालभाई ने वसीयतनामां करके घर के पाट में छिद्र करके रख दिया। वे देह छोड़कर गये परंतु वसीयतनामां का पता कहने से रह गया। उनके पुत्र गोपालानंद स्वामी के पास गये और सारी बात बताई। स्वामी ने समाधिवाले, स्वामी केशवजीवनदास को अक्षरधाम में भाईलालभाई से वसीयतनामें का पता पूछ कर आने को कहा। परंतु अक्षरधाम

में भाईलालभाई मिले नहीं। उनके पुत्र कहने लगे : 'हमारे पिता तो नियमित रुप से नियम-धर्म पालते थे और नियमित संत-समागम करते थे, फिर वे अक्षरधाम में क्यों नहीं मिले?'

गोपालानंदस्वामी ने पूछा : 'वे किस संत का विशेष रूप से संत-समागम करते थे?' उनके पुत्रों ने कहा : 'अमोघानंद स्वामी का।'

गोपालानंदस्वामी ने कहा : 'अमोघानंद स्वामी तो महाराज को रामचंद्रजी जैसा अवतार समझते थे। इसलिए आपके पिताजी उनके साथ साकेत लोक में विराजते होंगे।'

इसके पश्चात केशवजीवन स्वामी को समाधी में वहाँ भेजा तो वहाँ अमोघानंद स्वामी और भाईलालभाई - दोनों को रामचंद्रजी की कथा करते देखा। उनके पास वे वसीयतनामें का विवरण तो मिला पर यह प्रमाणित हुआ कि उनकी उपासना में कचाई रह जाने से उन्हे अक्षरधाम में महाराज की सेवा की प्राप्ति नहीं हुई। अर्थात्

'संपूर्ण महिमा श्रीजीनो, पतिव्रतानी टेक,
पेखो संतो पांचसो, गुणातीत तो एक।'

संवत 1911 के वर्ष में वड़ताल छावनी में स्वामी ने उपासना की, सर्वोपरि बात करी। भोलानाथ भट्ट ने कहा कि, 'स्वामी! पात्र को देख कर बात करनी चाहिए।' स्वामी ने कहा,'इतनी बड़ी सभा में पात्र-कुपात्र देखने कहाँ जाउँ? जब बरसात होती है तब खड्डा या चढाई (ऊँची जमीन) कुछ भी नहीं दीखता है। खड्डा हो तो पानी से भर जाता है और ऊँची जमीन हो तो ऊपर से पानी बह जाता है अर्थात् जो मेरी बात समझे तो वह पात्र अन्यथा जो नहीं समझे तो वह कुपात्र।'

स्वामी ने प्रेमानंद स्वामी से कहा था :'अब कुंजगली में से निकलो और महाराज के सर्वोपरि स्वरूप का पद रचो।'

नित्यानंदस्वामी को भी कहा था कि, 'महाराज ने स्वयं हमें अपना समय रात-दिन देखे बिना उनके सर्वोपरि होने की बात बताई है तो फिर हम उसे कहने-सुनने में पीछे क्यों हटते हैं? इससे तो हमारी किमत आधी हो जायें।'

महाराज ने गोपालानंदस्वामी को स्वप्न में दर्शन देकर कहा,'आपको मेरी सर्वोपरि महिमा की बात का प्रवर्तन करते रहना है।'

गुणातीतानंदस्वामी को तो महाराज को सर्वोपरि कहने में शास्त्र की कोई अड़चन नहीं आई थी। वे तो निधड़क हो कर महाराज की महिमा का गान करते थे। इस तरह हजारों को उन्होंने महाराज की उपासना की दृढ़ता कराई थी।

ऊना के सेठों को बहुत समय में एक मुश्किल का हल नहीं मिलता था। राज्य सरकार की और से भी कोई सहायता नहीं मिलती थी। सभी गुणातीतानंदस्वामी के पास आये और कहने लगे : 'स्वामी! आप दया करें तो काम पूर्ण हो जाये। यदि यह कार्य पूर्ण हो जाये तो

मंदिर का दरवाजा चांदी का करा दें।'

तब स्वामी ने कहा,'उसकी कोई आवश्यता नहीं है। परंतु श्रीजी महाराज पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान हैं, सर्व अवतार के अवतारी है ऐसी आप निष्ठा करो तो हम आपको आशीर्वाद देतें हैं।' और उसके फलस्वरूप उनका कार्य पूर्ण हो गया। इसी प्रकार लोधिका दरबार अभेसिंह की भी वेदांत की उलटी समझ मीटाकर स्वामी ने उन्हे सर्वोपरि की निष्ठा दृढ़ करवाई।

गुणातीत-परम्परा का कार्य आगे बढ़ गया है। आज सर्वोपरि उपासना करनेवाले लाखों लोगों का समूह देश में व विदेश में बढ़ता जा रहा है। गुणातीतानंद स्वामी इस बात में बताते है : 'ब्रह्मस्वरूप हुए बिना महाराज की सेवा में रह नहीं सकते है। ब्रह्मरूप होने के लिए महाराज की आज्ञा का पालन पूर्ण रूप से होना चाहिए। महाराज की प्रत्येक आज्ञा में लीन गुणातीत संत के संग की बहुत आवश्यकता है। अन्यथा जो संत आज्ञा पालन नहीं करता, ऐसे वाघरी साधु की सेवा जैसा होता है।'

आटा पीसने की चक्की बनाता हुआ एक वाघरी परेशान हो गया और स्वयं भगवा ओढ कर साधु बन गया। 'भज ले राम' गाता गाँव में निकला-वहाँ एक वृद्धा ने उसको देखा।

वृद्धा ने एक कथा में सुना था कि, यदि साधु को भोजन करायें तो अंतिम समय में वैकुंठ से विमान लेने के लिए आता है। वृद्धा साधु को अपने घर ले गई और भोजन खिलाने के लिए बिठाया। थोड़ी थोड़ी देर में वह बाहर आँगन में देखती जाती की विमान लेने के लिए आया है या नहीं? यह देख कर यह असाधु बोला : 'माताजी आप बाहर मत जाना, विमान तो नहीं आएगा, पर पत्थर पडेगा तो माथा फूट जायेगा। कारण यह है कि, मैं कोई सच्चा संत नहीं हूँ, जो मुझे खिलाने से आपको कोई विमान लेने के लिए आये।'

इसी तरह एक संत जो धर्म-नियम पालन में शिथिल था, जो सभा में धन-स्त्री के त्याग की बात करता था परंतु एकांत में वह बहुत बड़ा भोगी था। एक हरिभक्त हमेंशा उसकी कथा सुनता था। उसे लगता था कि, यह संत बड़ा सच्चा है। इसलिए उसने संत को कहा कि, 'मेरे अंत समय में मुझे अक्षरधाम में ले जाने के लिए आना।'

इस हरिभक्त से पहले ही उस संत की मृत्यु हो गई। क्योंकि संत नियम-धर्म के पालन में ढीला था इसलिए उसे भूत की योनि मिली और भूतिया शौचालय में रहता था।

जब इस हरिभक्त ने शरीर छोड़ा तो भूत ने साधु के रूप में दर्शन दिया और कहा : 'चलो मेरे साथ अक्षरधाम में।' हरिभक्त ने सोचा संत ने गुरुवचन का पालन किया जो मुझे अंतकाल के समय में भी याद रखा। उसके पश्चात् तो वह साधु उसे भूतियाँ शौचालय में ले गया।

वह हरिभक्त कहने लगा : 'गुरु यह तो दुर्गंधवाला मूत्र का शौचालय है। मुझे यहाँ क्यों लेकर आये हो?' साधु ने कहा, 'मेरा तो यही अक्षरधाम है। तूने मेरे साथ अपना जीव जोड़ा इसलिए मेरी जैसी तेरी भी गति हुई है।'

इस सन्दर्भ में लिखा है :

पार न करे पोत पाषाणनुं,
तरे तारे जो काष्टनुं जा'ज... ओळखवुं अंतरे।
तमे अंतरनी आँख ओळखी,
करो सद्गुरु संतनो संग... ओळखवुं अंतरे।

इसलिए कहा है :

समजीने जोडावुं साचा संतमां,
भवना फेरा टाळे साचा संत जो।

जो नियम धर्म में कमजोर मिले तो जन्म-मरण के फेरे का अंत नहीं है। इसलिए मुक्तानंद स्वामी स्मरण करवाते हैं कि,

सद्गुरु साचा रे सेवो शुद्ध भावशुं रे,
जेथी टळे मनना विविध विकार,
जेने संगे वाधे रे, प्रभु साथ प्रीतडी रे,
टळी जाय जात वर्ण अहंकार,
पांच वर्तमान रे पळावे दृढ़ करी रे,
संभळावे हरिनां चरित्र उदार
ऐवा गुरुदेव रे गोंविद सम जाणवा रे,
जेने संगे पामीए हरिनुं धाम...

पहले समय में श्रृंगार करने के लिए श्रृंगार कक्ष होता था। आज वर्तमान में उसके स्थान पर 'ब्यूटी पार्लर' है। इस तरह सोलह श्रृंगार से सजने के लिए गुणातीत संत महंतस्वामी महाराज के सत्संग में जाना पडेगा। आज की भाषा में कहे तो 'प्रमुख पार्लर' में जाना पडेगा। स्त्री-पुरुष सभी को अक्षरधाम की प्राप्ति का अधिकार है। सोलह साधनरूपी श्रृंगार स्वयं करने जाए तो 'आँख का काजल लगाया गाल पे' ऐसा हो जायेगा। अर्थात् अज्ञानी रहेंगे। अखा भगत ने ठीक ही कहा है :

'आंधळो ससरो ने सरंगट बहु, एम कथा सांभळवा चाल्यां सहु,
कह्युं कांई ने समज्युं कशुं, आंखनुं काजळ गाले घस्युं।'

मुक्तानंद स्वामी इस बात को दूसरे शब्दों में कहते है :

'मनमत्त थई कोटि साधन करे,गुरुगम विण उपाय काचो।'

यहाँ दर्शाये गये 5 साधन संत समागम से गुरु के मार्ग दर्शन द्वारा ही सिद्ध करने चाहिए। नहीं तो ऐसा होगा जैसी रेत में पानी अर्थात् अपने आप साधनों को सिद्ध करने जायेंगे तो सब व्यर्थ हो जायेगा।

36. स्वधर्म

अमरिका के नागरिक बनने के लिए व्यक्ति चोर, व्यभिचारी, व्यसनी ना हो व् जेल में नहीं गया हो ऐसे सख्त नियम है। तो अक्षरधाम में जाना हो तो वहाँ कोई पोपाबाई का राज्य नहीं है, इसलिए श्रीहरि की सेवा तो तभी मिलती है जब यहीं, त्यागी हो अथवा ग्रहस्थ हो, यदि नियमित स्वधर्म नियम का पालन करता हो। शिक्षापत्री में नियमपालन के लिए स्पष्टरूप से कहा गया है कि यदि त्यागी है तो उसे निष्काम, निर्लोभ, नि:स्वाद, नि:स्नेह और निर्मान पंचव्रत रूपी स्वधर्म का नियम पालन करना है।

ग्रहस्थ को दृढ़ता से 11 नियमों का पालन करना है। सत्संग में तो सभी प्रवेश कर सकते हैं परंतु अक्षरधाम में जाने के लिए पूर्ण रुप से स्वधर्म नियम का पालन करना चाहिए। गुटका नहीं चलेगा क्योंकि अक्षरधाम में गुटका की दुकान नहीं है।

एक घोडे की नाल में कील ढीली हो गई परंतु राजा युद्ध करने के लिए नाल की मरम्मत कराये बिना ही निकल पड़ा। ढीली कील निकल गयी और धीरे धीरे और कीलें भी निकल गयी, फिर नाल भी निकल गयी। राजा के युद्ध जीतने की अभिलाषा में, घोड़े की नाल निकल जाने से घोड़े के पैर में लग गयी और घोड़ा गिर गया जिसके फलस्वरुप राजा जीवित पकड़ा गया और उसने राज्य गंवा दिया। इस प्रसंग के संदर्भ में अंग्रेजी पुस्तक में लिखा है : 'For the want of a nail the king lost his reign.'

तिलक-टिका सहित पूजा, आरती, थाल, घरसभा, चेष्टा इत्यादि सभी संपूर्ण होने चाहिए। त्यागी और गृहस्थ स्वधर्म को किस रीत से सिद्ध करें ? इसलिए निष्कुलानंद स्वामी परामर्श देते है :

ते तो मोटा पुरुषने मळे रे,
त्यारे सहु सहुना धर्म पळे रे... (भ.चि. 48/13)

स्वामीश्री के समागम में त्यागी और गृहस्थ जी तोड़ नियम पालन करके अक्षरधाम में जाने के साधन को प्रबल (जैसे मुसाफरी से पहले रास्ते में नाश्ता पानी का प्रबंध करना) करते है।

37 वैराग्य :

पिता की आज्ञा से राम वन में जाने के लिए निकले तो साथ में सीताजी चलने के लिए तैयार हो गई। राम ने कहा : 'वनं हि बहुदोषम' - वन में बहुत अधिक मुश्किलें है। तो सीताजी कहती है : 'तव स्नेहन पुरस्कृतान तान सर्वान् दोषान् अहं साहिषये' - आपके स्नेह से मैं सारा दुःख सह लूंगी। अर्थात् जब सुख-सुविधा से वैराग्य हो जाये तब राम की - भगवान की सेवा प्राप्त होती है।

इसलिए श्रीहरि कहते है कि :

'सौ हरिभक्तने रहेवुं होये मारी पास, तो तमे मेलजो रे मिथ्या पंचविषयनी आश।'

तुलसीदास भी सबूत देते है कि :

'सेवक सुख चहे, मान भिखारी, नभ दुही दूध चहत तेही प्रानी।'

समैया में जाना हो तो मान के चलो कि रेत में रहने के लिए स्थान मिलेगा। ऐसी मानसिक तैयारी यदि रखेंगे तो श्रीहरि के अक्षरधाम में जाने के अधिकारी बन सकेंगे।

योगीजी महाराज कहते थे : जैसे तैसे, कैसे भी, किसी तरह, यहाँ वहाँ चला लो, तो वही वैराग्य है। संत समागम में इसी वैराग्य रूपी श्रींगार से सजना है।

40. ब्रह्मचर्य

जीवन में उर्ध्वगति प्राप्त करने के लिए संयम-ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। एस्ट्रोनॉट्स ऊपर चंद्रलोक में जब गये तो स्त्री को पृथ्वी पर छोड़ कर गये। वहाँ 'हनीमून' नहीं होता। भगवान की सेवा में ब्रह्मचर्य अति आवश्यक है। लक्ष्मणजी उर्मिला को घर पर छोड़कर जंगल में रामजी की सेवा में गये थे। रामसेवक हनुमानजी भी पक्के ब्रह्मचारी थे।

अक्षरधाम में मिथुनिग्रंथि नहीं है, इसलिए श्रीहरि कहते है कि :

'सौ हरिभक्तने रहेवुं होये मारे धाम, तो मुने सेवजो रे तमे शुद्धभावे थई निष्काम।'

श्रीहरि वचनामृत ग.म.33 में बताते है : 'मैं यहाँ गढडा में रहता हूँ इसलिए यहाँ हरिभक्तों का निष्काम वर्तमान अति दृढ़ है। और जो निष्काम वर्तमान में कच्चे है, वे भले ही मेरे पास रहते हैं, परंतु फिर भी मुझसे लाख गाँव दूर हैं - यदि निष्कामी भक्त मेरी सेवा करे तो वह मुझे पसंद है। ये मूलजी ब्रह्मचारी हैं वे अतिशय निष्कामी है, तो यह जो मेरी सेवा करते है वह मुझे अतिशय पसंद है और दूसरा कोई सेवा करे तो वह मुझे अच्छी नहीं लगती। इसलिए जो निष्कामी वर्तमान रखे वह मुझे प्यारा है और उसका और हमारा इस लोक में और परलोक में दृढ़ मेल रहता है।'

योगीजीमहाराज को भी यह व्रत अति प्यारा था। उन्होंने लंदन में कहा था कि, 'मुझे किसी दिन स्त्री का संकल्प नहीं हुआ।' यही बात स्वामीश्री ने अमेरिका में भी की थी।

इसलिए निष्कुलानंद स्वामी भक्तचिन्तामणि में कहते है : 'ब्रह्मचर्य ते ब्रह्मस्वरूप, कह्युं सनकादिके सुखरूप।'

अर्थात् जो ब्रह्मस्वरूप है वह श्रीहरि की सेवा में है।

गृहस्थों के लिए योगीजी महाराज कहते है : 'एक नारी सदा ब्रह्मचारी। और त्यागियों के लिए अष्ट प्रकार से स्त्री का त्याग। आप गृहस्थ भी ब्रह्मचारी कहलाते हो पर यदि नियम का उल्लंघन किया तो ब्रह्मचर्य व्रत नहीं कहलायेगा।'

इस तरह त्यागी-गृहस्थ सभी को ब्रह्मचर्य व्रत के साथ श्रीहरि की सेवा का अधिकार है। ब्रह्मचर्य द्वारा प्रभु की प्राप्ति करने के इच्छुक च्यवन, पराशर, सौभरि, नारद इत्यादि ने बहुत प्रयत्न किये परंतु अंततः निष्फलता ही हाथ लगी और इसके अतिरिक्त माथे पर बदनामी का काला दाग लगा। इसलिए देवानंदस्वामी ने गाया है कि :

बृहस्पति जेवाने भोळव्या, माया मनमां मगरुर। (2)
डाह्या पीलाणा दाढ्यमां, चावी कीधा चकचूर। (2)
सेवो साचा हरिसंतने...!

जिनमें हरि अखंड विराजते है ऐसे गुरु संत की कृपा से यह व्रत दृढ़ हो जाता है और महाराज की सेवा भी मिलती है।

42. महात्मयज्ञानयुक्त भगवान् की निश्चल भक्ति

इस सन्दर्भ में योगीजी महाराज कहते है : 'पुरुषोत्तम नारायण सर्वोपरि भगवान है। उनकी भक्ति-सेवा करनी है। दूसरे देवता और ग्रहों के मुंह भरने का भार न रखो। कोई ब्राह्मण कहे : 'तुम्हारे साढ़े सात की पनोती है।' तो उसे कहना : 'भाग यहाँ से' जिसको निश्चल भक्ति होती है उसे इन चक्करों में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। बहुत लोग ज्योतिषी को अपना हाथ दिखा कर पूछते है : 'मुझे कितने वर्ष जीना है ?' पर एक दिन तो मरना ही है।'

श्रीहरि सर्वोपरि हैं यह महिमा उनके मुख से कहने पर समझ आती है परन्तु शास्त्र द्वारा समझ नहीं आएगी। श्रीहरि गढडा प्रथम के तेरहवें वचनामृत में अपने सर्वोपरि स्वरूप की बात कहते है : 'जो तेजोमय मूर्ति दिखाई देती है वह प्रत्यक्ष महाराज हैं ऐसा समझ लो।' जो सभा में करने वाली बात नहीं है वह महाराज ने सभा में करी। यह सुनकर बहुत हरिभक्तों को यह बात समझ नहीं आई, इसलिए श्रीहरि ने तुरंत कहा : 'जो यह बात समझ में न आये तो इतना तो अवश्य समझो कि, इस अक्षररूप तेज में प्रकट जो मूर्ति है उसे महाराज देखते हैं।' इसका अर्थ यह हुआ कि, पृथ्वी पर जो महाराज है वही मूर्ति अक्षरधाम में भी विराजित है व् उस मूर्ति को देखनेवाला भक्त बन गया। इसलिए सर्वोपरि निष्ठा के श्रृंगार से सजने के लिए महाराज वचनामृत में कहते हैं : 'जब सत्पुरुष प्रकट होते हैं तब उनके मुख से यह बात समझ में आती है परंतु अपनी बुद्धि के बल से अनंतकोटि ब्रह्मांड जिनके एक एक रोम में अणु के समान रहते हैं। ऐसे मूर्तिमान अक्षर है जिनसे परे पुरुषोत्तम हैं - यह पुरुषोत्तम की महिमा है। पुरुषोत्तम से सम्बंधित एक लक्षण 'अक्षरातीत' असीमित है अर्थात् अक्षर जो पुरुषोत्तम की महिमा है। अर्थात् महिमा सहित पुरुषोत्तम की भक्ति जो है अक्षर सहित पुरुषोत्तम की भक्ति, इसलिए अक्षररुप होकर पुरुषोत्तम की भक्ति करना।'

ऐसी महिमा के साथ ज्ञान अथवा भक्ति हो तो लोया प्रकरण के तीसरे वचनामृत में यह प्रमाणित है कि, भक्त की वृत्ति ऐसी रहे तो वह भगवान और संत के लिए क्या नहीं कर सकता।

संतो के आख्यानों को सुनने के पश्चात, सत्संग में दादाखाचर, पर्वतभाई, गोवर्धनभाई, जीवुबा, लाडुबा, कुशलकुंवरबा, लाधिबा, हरजी कापडिया, खीमा सुथार, बारपटोली के खीमा वाघ की पत्नी, इत्यादि भक्तों की भगवान और संत की, महिमा सहित भक्ति में दृढ़ता बढती रही है।

साधारण भक्ति हो तो महिने का वेतन पाने वाला अपनी कमाई का 10 वाँ या 20 वाँ भाग धर्मदान के लिए निकालता है परंतु जिसे महिमा सहित भक्ति का ज्ञान है उसे तो समर्पण भाव से सर्वस्व अर्पण करने की इच्छा होती है। और साधारण भक्तिवाला जिसके तीन पुत्र होते है उनमें से एक तो वह साधू बनाने को तैयार हो जाता है। जबकि, महिमा सहित भक्तिवाला

अपना इलोता पुत्र भी साधु होने दे देता है। संक्षेप में जिसे महिमा सहित भक्ति है, उसे माया का बंधन नहीं है।

जब शरीर में कोई रोग आता है अथवा व्यापार में कोई हानि हो जाती है तब साधारण भक्तिवाले की भक्ति चली जाती है। यदि मान अपमान का भाव रहे जिसमें अभाव-अवगुण की प्रवृत्ति रहती है उसकी भक्ति में विघ्न आता है। संत समागम से यह विघ्न टल जाते हैं और भक्त सुख से अक्षरधाम में जाता है।

44. निर्दंभ :

किसी ने कहा है कि, 'आ दुनिया छे दंभ भरेली, उपरथी पोलिश करेली।' अर्थात् यह दुनिया दंभ से भरी हुई है। केवल उपर से पोलिश की हुई है। यह जमाना ही कोस्मेटिक्स का है। केवल दिखावे का है। सफेद हुए बाल को वापस डाय करके काला करना। काले होठो पर लाली लगाना। उम्र को ढकने के लिए कायाकल्प करना। इसप्रकार सब जगह दंभ के नकली नकाब के नीचे असलीयत को छुपाने का प्रयत्न हो रहा है।

कहावत है कि,'All that glitters is not gold.' - जितना कुछ चमकता है वह सोना नहीं है। दंभ के मूल में अहंकार और पंच विषय में आसक्ति है। अपने में कुछ न हो फिर भी उसका दिखावा करने का मनुष्य का सहज स्वभाव है। विश्व में प्रत्येक क्षेत्र में तथा धार्मिक क्षेत्र में तो धर्म, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति में भी अधिकतर दंभ ही दिखाई देता है। कोई कोई नेताओं नीति-विषयक चोटदार प्रवचन करते है, परंतु उनका जीवन संपूर्ण अनीतिमय होता है। उपर से लोक सेवा का दिखावा और रिश्वतवाला जीवन होता है। एक धार्मिक नेता अपनी रंग बिरंगी पुष्पित वाणी से लोगों को रंजन कराते थे, परंतु उनका आंतरिक जीवन अधार्मिक था। सच्चे मुमुक्षु तो दंभी गुरुओं को बोलचाल पर से पहचान जाते है।

कोई दंभी भक्त भगवान की मूर्ति के आगे लोट-पोट होकर बहुत भक्तिभाव दिखाते है, परंतु धन के लोभ से भगवान की मूर्ति को भी विदेश में बेच देता है। स्वयं को भगवान का साक्षात्कार है और उससे भी आगे बढ़कर स्वयं ही भगवान है - ऐसी दंभी बात करके स्वयं में दिव्यभाव रखने की बात बार-बार करके स्वयं ही हरेक प्रकार के कुकर्म करनेवाले दांभीक धर्म गुरुओं भी लोक में घूमते है। भगवान का साक्षात्कार न हो और लोगों पर अपना प्रभाव डालने के लिए भगवान की बातें करता है, परंतु उस बेकार बातों से भगवान विषयक माहिती मिलती है परंतु भगवान नहीं मिलते।

इसलिए निष्कुलानंद स्वामी ने कहा है कि,

'देखी उपरनो आटाटोप रखए मने मोटा मानो रे,
ए तो फोगट फूल्यो छे फोप, समजो ए संत शानो रे...'
जेनो अंतरमां काम-क्रोध-लोभनी लाय बळे,
ऐवा बहु करता होय बोध ते सांभळे शु वळे,

और कहा है :

'डोळी देखी म डगावो दिल...'

कुछ दंभीयों का जीवन ऐसे ही बेकार चला जाता है, परंतु जब उसका दंभ खुल्ला होता है तब दुधाधारी बाबा के जैसी हालत होती है।

श्रीहरि जब वनविचरण में थे तब उन्होंने एक दूधाधारीबाबा को देखा था। वह दिन में दुध पीकर रहता था और रात को मालपानी उडाता था। रात को उनके साथी गाँव में से चोरी करके जो पैसे लाते वह अपने आसन के नीचे एक भुगर्भ किया था उसमें रखता था। एकबार उसकी पोल खुल गई और राजा ने बाबा का मुंडन करवाया, आधी मुंछ मुंडाई, उसे गधे पर बिठाकर पूरे गाँव में घूमाया।

इसलिए ब्रह्मानंदस्वामी ने कहा है :

'कंठीधार टीका कीधा, भेख नीका, बने ठीकठीका, चले रावने में,
सबि पाय लागे धरे भेट आगे, बहु चातुरी लोक बोलावने में,
साखी बो'त शीखी, करे बात तीखी, घनी रीत ठाने, गुने गावने में,
ब्रह्मानंद कहे बो'त ज्ञान जाने, तेरा तान तो रांड रीझावने में।'

आज विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में कौभांड चलते है। उस पाप का भंडार जब तूटेगा तब लोगों की आंख खूलेगी। 'दुनिया झूकती है, झूकानेवाला चाहिए।' इस अनुसार विश्व में समय समय पर ऐसे दंभासूर प्रकट होते ही रहते है। और भोले लोग उसकी चंगुल में फंसते रहते है। साधु वेश में रावण बढ़ते जा रहे है। और भोली सीताएँ उसमें फंसती जाती है। भगवे में व्यभिचार और ब्रह्मचर्य की बातें करते है। यह तो 'दिन का साधु और रात का चोर।' ऐसी बात है। डॉ.जेकील और मिस्टर हाईड जैसा दंभी जीवन है। उसके नकली चहेरे के नीचे दंभ का असली चहेरा छूपा हुआ रहता है। सिंह का चमड़ा ओढ़ने से गधा कभी सिंह नहीं बन जाता।

ऐसे दंभीयों के प्रति अरूचि बताते हुए श्रीहरि गढडा प्रथम प्रकरण के 76 में कहते है कि, 'हमें दंभ पसंद नहीं है।' और कारियाणी के तीसरे वचनामृत में कहते है कि, 'कोई बिल्ली की तरह नीचे देखकर चलता हो, परंतु भीतर से महाकामी होता है।'

सन् 2000 की साल में मायामी में अमरिका के तत्कालिन प्रमुख बिल क्लिन्टन स्वामीश्री से मिले तब प्रथम दर्शन करते ही वे बोल उठे : 'I saw integrity in his eyes.' स्वामीश्री की आँखों में साधुता की सच्चाई है। दलपत राम कवी ने सही कहा है कि, 'साधुता तो आँखमां ओडखाय।'

लोया प्रकरण के पांचवे वचनामृत में दंभी का दंभ कैसे पहचाना जाता है? उस संबंध में श्रीहरि स्वयं ही प्रश्न उपस्थित करके स्वयं ही समाधान उपस्थिति करते है कि, 'जो दम्भपूर्वक पंचव्रतों का पालन करता हो, और दम्भपूर्वक ही भगवान संबंधी निश्चय रखता हो, और वह बुद्धिमान हो, तथा अभिमानी हो, तथा अन्य भक्तों के व्रतपालन एवं निश्चय की अपेक्षा अपने व्रतपालन और निश्चय की दृढ़ता को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रदर्शित करता हो, तब उसके बारे में कैसे जान सकते हैं कि, यह तो दम्भपूर्वक ही व्रतपालन और निश्चय रखता है?'

अपने इस प्रश्न का उत्तर स्वयं ही देते हुए कहते है कि : 'जब उसकी प्रतिष्ठा को आघात पहुँचता है, तभी उसके दम्भ का पता लग जाता है, अन्यथा नहीं लगता।'

नेपाल में एक बाबाजी गुफा में रहता था। कुछ खाता-पीता नहीं था। वे महासिद्ध है ऐसा लोग मानते थे। वहाँ का राजा भी उन्हे गुरु मानता था। वह बारह महिने में एकबार गुफा में से बाहर निकलता था। तब भारी मेला लगता था। सभी बाबा की जयजयकार करते थे। राजा भी सवारी लेकर उनका दर्शन करने आता था। एकबार बाबाजी को बाहर निकलने का समय था, तब नीलकंठ वर्णी उस नगर में आये थे। राजा ने उन्हे अपने गुरु की बात बताई। नीलकंठ ने कहा,'बिना खाये पीये कोई जिंदा नहीं रह सकता। वे कुछ तो खाते होंगे? वे क्या खाते है वह मैं आपको बताउं।' ऐसा कहकर कहा,'इस बार जब बाबाजी गुफा से बाहर नीकले तब आप या अन्य कोई उसके दर्शन करने न जाये। मेला न करे। इससे बाबाजी क्या खाते थे वह आपको पता चल जायेगा।'

राजा ने मेला भरने पर कड़ा प्रतिबंध लगा दिया। जब बाबाजी बाहर निकले और किसी व्यक्ति को नहीं देखा तब वह बोला, 'कोई भी नहीं आया।' ऐसा बोलकर आघात में ही मर गया। वह मान के कारण जीवीत रहता था। उसकी प्रतिष्ठा का भंग हुआ तब प्राण भंग भी हो गया।

श्रीहरि गढडा मध्य 39 वे वचनामृत में कहते है कि, 'जिस किसी स्त्री तथा पुरुष के सम्बंध में हमें यह ज्ञात हो जाए कि, यह तो उपर-उपर से, केवल दम्भ से भगवान की भक्ति करता है, परंतु वह सच्चा भक्त नहीं है, तो उसे देखकर न तो हमारा मन प्रसन्न होता है, न उसके साथ हमारी जमती है।'

जिसके साथ महाराज की जमे ही नहीं तो फिर उनकी सेवा किस प्रकार अंगीकार करें?

वरताल के पांचवे वचनामृत में श्रीहरि को होशियार दंभी के प्रति नाजा भक्त पूछते है कि, 'जिसको भगवान का परिपूर्ण आश्रय न हो, फिर भी बोलचाल में पक्के हरिभक्त के समान ही निश्चय का बल प्रकट किया करता हो, उसकी सच्चाई की परख किस प्रकार से प्राप्त होती है?'

तब श्रीजीमहाराज बोले कि, 'भगवान के भक्तों को श्रेष्ठ या कनिष्ठ निश्चय हों तो उसकी परख उसके साथ में रहने और साथ में व्यवहार करने से पूरी तरह मालूम पड़ जाती है।'

कहा गया है कि, 'व्यवहारेण साधु।' दंभी अपना दंभ चाहे किसी भी तरह छिपाने जाये परंतु साथ में रहनेवाले को उसके दंभ का पता चल जाता है। कहा गया है कि,

'हकीकत छूप नहीं सकती, कभी जूठे उसुलों से,
खुश्बो आ नहीं सकती, कभी कागज के फूलों से।'

निष्कुलानंदस्वामी सच कहते है :

'खातां-पीतां जोतां जणाशे रे, आशय एना अंतरनो,
उठे बेसे बोले कळाशे रे, पासे वसता ए नरनो।
हशे हारद हैया केरुं रे, वण कह्ये पण वरताशे,
जेम जेम छपाडशे घणेरुं रे, तेम तेम ते छतुं थाशे,
खाय खूणे लसण लकी रे, ते गंध करे छपावानुं,
कहे निष्कुलानंद बात नहीं रे, जेम छे तेम जणावानुं।'

अपने आप को होशियार माननेवाले ऐसे दंभी मनुष्य उनके साथ रहनेवाले की नजर में तो बिलकुल चलते पूर्जे जैसे ही दिखाई देता है। दंभीयों के हास्य के लिए ही अटहास्य शब्द की खोज हुई है।

इसबात की पुष्टि में श्रीहरि गढडा अंत्य के 26 वे वचनामृत में कहते है कि, 'मुझे अहंकार पसंद नहीं है। दम्भ पसंद नहीं है। वह दम्भ क्या है ? तो अपने हृदय में भगवान के स्वरूप का निश्चय, भक्ति और धर्मनिष्ठा कम हों, किन्तु दूसरों के आगे अपनी महत्ता बढाने की दृष्टि से इन सबको बढ़ाचढ़ा कर दिखाया करे, वही दम्भ है, जो मुझे तनिक भी पसंद नहीं है।'

एक दम्भी महात्मा जाहिर में कहे : 'हम तो दोपहर में एक ही बार खाते है। सुबह में दूध भी नहीं पीते है।' परंतु जब सभा चल रही हो तब सभा में से उठकर कमरे में जाकर गुप्त रुप से दूध पी लेता है। ऐसा उसका दम्भ खुल गया और सब लोगों को उसकी महत्ता रही नहीं। घर के एक कमरे में भगवान का सुंदर मंदिर हो और दूसरे कमरे में शराब और मांस की पार्टी चलती हो! ऐसा द्विमुखी व्यक्तित्व वह पक्का दंभ है।

निखालस व्यक्ति पर अपनी प्रसन्नता बताते हुए श्रीहरि वचनामृत गढडा अंत्य 30 में कहते है कि, 'उन भगवान की प्रसन्नता के लिए जो भक्त तप तथा योगसाधना करता हो, पंचविषयों से उदासीन रहता हो तथा वैराग्यवान हो, आदि जो-जो साधन भगवान की प्रसन्नता के लिए निर्दम्भ होकर करता हो, तो वह हमें पसंद है। उसे देखकर हमारा मन प्रसन्नता से भर जाता है कि इसे धन्यवाद है, कि यह इस प्रकार आचरण करता है।'

योगीजी महाराज भी कहते थे कि, 'किसी भी प्रकार का दम्भ न रखें। अपने पास पूंजी न हो और लाख रुपये दिखावे वह दम्भ है। कपड़े मांगकर पहनता हो और अपना है ऐसा कहे वह दम्भ है। धर्म-ज्ञान कम हो और अधिक दिखाये।'

योगीजी महाराज की निर्व्याज, पारदर्शक और निखालस साधुता की असर प्रत्येक को होती थी। मन-कर्म-वचन में उनकी एकरुपता थी। जैसे भीतर वैसे ही बाहर। चबाने के और दिखाने के दाँत अलग नहीं। उनका मुक्त हास्य ही उनकी निखालसता का परिचय था। 'आकृतिः गुणान् कथयति।' अनुसार रविशंकर महाराज कहते थे कि, 'योगीजी महाराज को

देखते ही लगता था कि उन्होंने आध्यात्मिक आनंद का आनंद बहुत किया है।'

होलेन्ड के हनकोप ने अफ्रिका में योगीजी महाराज की छवि देखकर उनके प्रति आकर्षण हुआ। उन्होंने परम भगवदीय श्री सी.टी. पटेल से पूछा,'ऐसा प्रसन्न हास्य करनेवाले ये संत कौन है ? मुझे उनसे मिलना है।' तब सी.टी. पटेल ने कहा,'वे तो स्वधाम पधार गये है, परंतु उनके अनुगामी प्रमुखस्वामी महाराज है। मैं उनका दर्शन करा सकता हूँ।' और हनकोप का सत्संग में प्रवेश हुआ। प्रथम दृष्टि में ही योगीजीमहाराज का निखालस हास्य उन्हे प्रभावित कर गया।

दिनांक 6-11-2005 को भारत के राष्ट्रपति श्री अब्दुलकलाम को भी ऐसा ही अनुभव हुआ था कि, अक्षरधाम (दिल्ही) के उद्घाटन प्रसंग पर आये हुए उनकी मुलाकात परम पूज्य प्रमुखस्वामी महाराज के साथ मुलाकात कक्ष में हुई तब योगीजी महाराज की मूर्ति देखकर वे बोल उठे कि, 'वाह, कैसा निखालस हास्य है ?' योगीजी महाराज के हास्य में प्रतिबिंबित भीतर की निदंभता से राष्ट्रपति भी प्रभावित हो गये।

मूलशंकरभाई व्यास गुलजारीलाल नंदा के साथ मुंबई में योगीजीमहाराज से एकबार मिले थे। इसके साथ ई.स.1974 में सन्तों को वे आफ्रिका में मिले थे। तब उन्होंने कहा,'योगीजी महाराज के जैसा हास्य दुनिया में अब तक मैने किसी का नहीं देखा है।'

'चिन्मयमीशन' के स्थापक स्वामी चिन्मयानंदजी के उद्गार योगीजी महाराज के निर्दंभ व्यक्ति के बारे में बहुत कुछ कह जाता है। उन्होंने कहा कि, 'योगीजी महाराज के सानिध्य में मैने जो कुछ अनुभव किया उसे मैं शब्दों में प्रस्तुत नहीं कर सकता। उपनिषद में जो अनुभूति है उसका वे मूर्तिमान स्वरूप थे। उस वृद्धकाया में से अपने आप स्फूटित होता हुआ सर्वात्मा बह्म का सर्वोच्च आनंद, मानो विशुद्धप्रेम की सुगंधीमान लहरो के रुप में निकलता हुआ प्रपात उनके नजदिक में आनेवालो में प्रवेश कर जाता था और हृदय भर देता था। फिर चाहे भले उसे बरदास्त करने के लिए सुपात्र न हो। इसलिए ही कोई भी उन्हे तथा उनके सानिध्य को छोड़ नहीं सकते थे। ऐसे आध्यात्मिक गुरु को हम प्रणिपात कर सकते है।'

योगीजी महाराज अपनी जीवन भावना में कहते है कि, 'कोई मेरी जंयती मनाये वह मुझे पसंद नहीं। मेरे पूजन की मुझे इच्छा ही नहीं है। यदि कोई हार पहनाये वह मुझे पसंद ही नहीं है। दंडवत् करे या जय बुलाये वह भी मुझे पसंद नहीं है। यह मैं निष्कपट भाव से कहता हूँ।' वे कईबार कहते थे कि, 'हम नेता नहीं है, हम तो सेवक है। हम तो बर्तन साफ करनेवाले है।'

योगीजी महाराज मन-कर्म-वचन से लबालब अमृत भरे हुए थे। एकबार योगीजी महाराज के समक्ष फलफलादि का प्रसाद डीस में भरकर रखा गया। इसके साथ उनके हाथ न बिगड़े इसके लिए चमच भी रखी थी। योगीजीमहाराज ने फल का प्रसाद हाथ से चमच में रखा

और बाद में उस चमच द्वारा मुख में रखा। तब किसी ने कहा,'बापा आपके हाथ न बिगड़े इसके लिए चमच रखी गई थी। आपने तो हाथ से लेकर चमच में रखकर प्रसाद लिया।'

तब योगीजी महाराज बोले, 'ओहो! ऐसा था, हमको ऐसा लगा कि, चम्मच में रखकर खाने से अधिक स्वाद आता होगा।'

सभी योगीजी महाराज के इस निखालस वाक्य पर हंसने लगे।

सभा में कोई वक्ता योगीजी महाराज की प्रसंशा करे उनके गुण गाये। तब सभी हरिभक्त प्रसन्न होकर तालिया बजाते। उस समय योगीजी महाराज भी सबके साथ ताली बजाने लग जाते थे। उनको पता ही नहीं था कि, किसके गुणगान हो रहे है ? ये तो अखंड भगवान की मूर्ति में ही मग्न रहते थे।

एकबार शास्त्रीजी महाराज ने एक हरिभक्त की बात करते हुए योगीजी महाराज से कहा कि, 'ये हरिभक्त सेवा करने में थोड़े ढीले है। आपको उनके साथ में स्नेह है तो आप उन्हे सेवा की बात करों। तो कुछ अधिक धर्मदान दे।'

योगीजीमहाराज यह सुनकर जब वह हरिभक्त मिले तब उन्हे कहने लगे कि, 'मुझे शास्त्रीजी महाराज ने कहा है कि, आपको मेरे साथ स्नेह है तो मुझे आपको अधिक सेवा के लिए बात करना है। तो अब आप शास्त्रीजी महाराज कहे उस प्रकार सेवा करें।'

शास्त्रीजी महाराज ने कहा था वैसा का वैसा योगीजी महाराज ने कह दिया। उनके जीवन में बिल्कुल दंभ, बनावट या कपट नहीं था।

स्वामीश्री योगीबापा के कृपा पात्र है। फिर भी उन्होंने कभी योगीजी महाराज की नकल नहीं की। अर्थात् मनाने, पूजन के लिए कभी उनकी नकल नहीं की। जब को कहे, 'योगीजी महाराज जिस प्रकार थप्पा लगाते थे उस प्रकार आप भी लगाईये।' तो वे कहे, 'वह तो योगीजी महाराज ही थप्पा दे सके, हमको ऐसा नहीं आता है।'

दि. 2-7-2004 को ओरलान्डो में युवा-अधिवेशन में युवको ने कहा : 'बापा! अंग्रेजी में बोलीये।' स्वामीश्री निखालसभाव से बोले : 'आई डोन्ट नो ईंग्लीश।'

एक प्रधान को अंग्रेजी नहीं आती थी। उन्हे किसी स्थान पर प्रवचन करना था। उन्होंने अपना प्रभुत्व दिखाने के लिए गुजराती लिपि में किसी ने लिखकर दिया प्रवचन पढ़ा!

युनो में स्वामीश्री को प्रवचन करना था तब स्वामीश्री ने कहा : 'मैं तो गुजराती भाषा ही जानता हूँ। तो उस भाषा में बोलुंगा।'

स्वामीश्री को दंभ पसंद नहीं है। दि. 10-10-1994 में विद्यानगर में कार्यकर - अधिवेशन में टी.वी. की खराब असर विषय के 'कल्पवृक्ष' संवाद के कलाकार युवको को स्वामीश्री ने कहा था कि : 'यहाँ जितने लोगो ने भाग लिया है उतने प्रतिज्ञा करो कि टी.वी. देखना ही नहीं है। तो ही फिर से स्टेज पर आने मिलेगा, वरना आना नहीं। दिखावा करके दुनिया को

ढगना ऐसा नहीं चलेगा।'

जिनकी प्रेरणा से ही अक्षरब्रह्म गुणातीतानंदस्वामी का जन्म द्विशताब्दी महोत्सव धूमधाम से मनाया गया ऐसे स्वामीश्री ने महोत्सव की समाप्ति की स्वयंसेवको की सभा में आशीर्वचन में कहा था : 'आप सभी ने जो सेवा की है उसके लिए सभी को करोड करोड दंडवत् करु तो भी कम है। मैने तो सिर्फ कुर्सी की शोभा बढ़ाई है।'

दि. 3-10-1995 में सागरयात्रा के समय 'भक्तचिंतामणि' पर निरुपण के समय भी स्वामीश्री ने कहा था : 'अंधा गाता है या पीसता है। उस प्रकार हमें क्या करना है ? भजन के या कथा करें। हमें पाट से खटीया और खटीये से पाट। हमारा दूसरा कोई काम ही नहीं है।'

बढ़ती हुई उम्र के कारण पहले के जैसा विचरण नहीं होता था, फिर भी उन्होंने बिल्कुल विचरण बंद नहीं किया था। परंतु उनकी जीवनभावना उपरोक्त वाक्य बोलते है।

गोंडल में 40 वे प्रमुखनियुक्ति दिन पर स्वामीश्री ने बहुत ही भावविभोर होकर निखालसता से ही हृदय की बात की थी : 'सभी संतो-हरिभक्तों के साथ से ही कार्य होता है। शास्त्रीजी महाराज, योगीजी महाराज की मुझ पर दया है कि, हमारी (मेरी) प्रतिष्ठा बढे, महत्ता बढे, वह वस्तु पहले से नहीं थी। शास्त्रीजी महाराज जैसी योगीजी महाराज की भी इतनी ही कृपा। उन्होंने भी मुझे उतना ही संभाला है। सभी कोठारीयों ने और सभी संतो का बहुत उत्साह और सहकार है। और महानपुरुष कार्य कर गये है। हम तो केवल निमित्त है। मुझ में कोई शक्ति या कौशल्य नहीं है, परंतु शास्त्रीजी महाराज और योगीजीमहाराज की दृष्टि से ही चलता है।'

दि. 2-7-2004 को ओरलान्डो, युवा-अधिवेशन में भी ऐसी ही बात कही थी : 'हम सामान्य वर्ग में से आये है। (घर पर) इतना बड़ा व्यवसाय नहीं था की कौशल्य हो। पढ़े भी नहीं और ज्ञान भी नहीं। शक्ति भी नहीं।'

दि. 4-6-1995 में कोसंबा (वलसाड) में बिल्कुल सहजता से बात की : 'जोगीबापा ने एकबार कहा था : 'यह हमारे प्रमुखस्वामी शास्त्रीजी महाराज की दया से कैसा कार्य करते है। यदि घर पर होते तो खेती करते होते।' बात भी सही है। किसान का लड़का दूसरा करे क्या ?'

दि. 9-4-1996 को गढडा में भी ऐसी ही बात की थी : 'हम पढ़ते थे तब खेत में खुरपी चलानी पड़ती। दो होती उसमें बड़ी हो वह दूसरे चलाते, छोटी हमें चलानी होती।'

सन् 1985 में लंदन सुवर्णतुला के समय उन्होंने प्रवचन की शुरुआत में ही श्रीहरि, शास्त्रीजी महाराज और योगीजीमहाराज की महिमा जिस भाव से कही थी, वह विडियो देखकर सी.के. पीठावाला सत्संगी बन गये थे।

अन्य दंभी तो पूर्वाश्रम की ऐसी बात या स्वयं के लिए किसीने गौण बात की हो तो

छुपाते, परंतु स्वामीश्री को अपने पूर्वश्रम की साधारण परिस्थिति की बात कहने में जरा भी संकोच ही नहीं था।

एक दंभी भक्त सभा में माला कर रहा था। किसी ने पूछा,'कितनी माला करते हो?' उसने कहा,'जैसी व्यक्तियों की भीड़।'

स्वामीश्री कथा, कीर्तन, भजन, ध्यान, सेवा आदि जो कुछ करते है वह भगवान की प्रसन्नता के लिए ही करते है, साहजिक करते है।

स्वामीश्री अपनी महिमा की या कार्य की बात कभी किसी को नहीं कहते। वे तो अपने गुणों को छिपाकर रखते है। लोगों को बताते नहीं। निर्दंभ से रहना वह सबसे बड़ी साधना है। दि. 3-10-1995 को सागरयात्रा में कहा था : 'हम माप से बोले वह काम का, महत्ता बढ़ाने के लिए अधिक न बोले।'

सन् 1990 में स्वामीश्री की 70 वी जन्म जयंती के समय विश्वप्रसिद्ध फोटोग्राफर रघुराय ने कहा था : 'स्वामीश्री सभा में पत्र लिखते हो और पास में रखकर, किसी भी प्रकार की पूर्वतैयारी बिना हजारों के बीच तुरंत प्रवचन देने लगते है। ऐसे महात्मा मैने पहली बार देखे है।'

दि. 24-11-2004 को अहमदाबाद में अखिल भारतीय दर्शन परिषद के वरिष्ठ पदवाले सभा में बैठे थे तब स्वामीश्री ने उनकी गुजराती मिश्रित तूटीफूटी हिन्दी में नि:संकोच प्रवचन किया। 'मैं सूर या लय बिना का गाउंगा तो लोगों को कैसा लगेगा?' - ऐसे भाव रखे बिना कभी सभा में कीर्तन भी गा लेते।

इसप्रकार, उनकी प्रत्येक क्रिया में उनकी निर्व्याज साधुता के ही दर्शन हरकिसी को होते है। क्योंकि उनको दंभ करके लोगों को प्रसन्न करने की या लोगो पर प्रभाव डालने की भावना नहीं है। उनका निर्दंभी जीवन ही उनकी साधुता का द्योतक है।

यह लिखनेवाला आध्यात्मिक मार्ग पर गुरुकृपा से अपने दोषो और अपने अधूरेपन से सभान है, इसलिए ऐसे विषय पर बोलने - लिखने में सहज संकोच अनुभव करता है। परंतु यह वचनामृत में बताये अनुसार, निर्दंभी गुरु के समागम से दोष मिटेंगे ऐसी श्रद्धा है। नहीं तो आत्मवंचना और केवल दंभ में ही जीवन व्यतित होता।

हम संत-समागम द्वारा दंभ का कोस्मेटिक लिबास उतारकर कर निखालसता का सही श्रींगार समजाये।

50 उपसंहार

गीता के दूसरे अध्याय में स्थितप्रज्ञता के लक्षणो के भाष्य की पूर्वभूमिका (2/53) में श्रीशंकराचार्यजी कहते है : 'अध्यात्म-शास्त्र में सभी जगह कृतार्थपुरुष अर्थात् सिद्धपुरुष के जो लक्षण बताये है, वही लक्षणो दूसरे साधको के लिए प्रयत्नपूर्वक सिद्ध हो सकने के कारण वह लक्षण प्रयत्नपूर्वक सिद्ध किये जाते है, वही लक्षण सिद्धपुरुष के स्वाभाविक लक्षण होते है।' इसका अर्थ यह हुआ कि, गुणातीत गुरुपरंपरा के गुरु में यहाँ बताये साधन स्वयंसिद्ध है।

इस निरुपण में सोलह साधन बताये है उसमें श्रीहरि तथा गुणातीत गुरुपरंपरा के गुरुओ के उदाहरण भी बताये गये है। वह तो साधक को उसमें से उस प्रकार वर्तन करने की प्रेरणा प्राप्त हो उसके लिए है। भगवान और गुरु में तो यह सब स्वयंसिद्ध ही है।

उनकी जीवनशैली अनुसार हमारी जीवनशैली बननी चाहिए। उनमें दया है, संतोष है तो हमें भी वह गुण प्राप्त करने चाहिए। ऐसे हो तो उनकी तरह हम भी अखंड महाराज की सेवा में रह सके। तथा महाराज को दया पसंद है। हमें उनकी सेवा में रहना हो तो हमें भी दया का गुण प्राप्त करना चाहिए। उनको जो गुण पसंद है वे सभी गुण प्राप्त करे तो ही उनकी सेवा में रह सकते है।

भगवान को प्राप्त करने के लिए लोग मनस्वी होकर अर्थात् अपने मन की मानो कई साधना करते है परंतु यहाँ बताये अनुसार सातवीं साधना 'संत-सत्संग' द्वारा अर्थात् प्रमुखस्वामी महाराज के समागम द्वारा ही बाकी के पंद्रह साधन सिद्ध करके अक्षरधाम में श्रीहरि की सेवा में ठीक तरह से प्राप्त कर सकते है।

इसप्रकार, इस पुस्तक में हमें सच्चे और सर्वोच्च सुख का पता देखा। उस सुखसदन तक पहुँचने में आते विघ्नो को भी जाना-पहचाना। उस शाश्वत शांति के स्थान समान अक्षरधाम तक पहुँचने का सोलह सोपान से भी माहितगार हुए।

अक्षरधाम में सदा विराजमान भगवान स्वामिनारायण के असीम सुख की पृथ्वीलोक में प्रतीति अर्थात् प्रमुखस्वामी महाराज। सहजानंद के आनंद को अखंड भोगते स्वामीश्री के जीवन को देखकर सहजानंदी सुख-अक्षरधाम का सुख लेनेवाला निशान हम ऐसे गुणातीत गुरु के मार्गदर्शन से हम प्राप्त कर सकते है। उस निशान को प्राप्त करने में बीच में आते विघ्नो को भी उनके मार्गदर्शन से हम पार कर सकते है। हमें गुणातीत गुरु समान प्रमुखस्वामी महाराज की प्राप्ति हुई है। तो उनके सहारे, उनके पदचिन्हो पर चला जाये तो यह सोलह सोपान का आरोहण अशक्य नहीं है। सुख की प्राप्ति - अक्षरधाम की प्राप्ति भी दूर नहीं है। तो आईये, प्रमुखस्वामी महाराज के ताल से ताल मिलाकर, उनके नकशेकदम चलते चलते गाये :

चलो चले हम अक्षरधाम, स्वामिनारायण अक्षरधाम,
परम शांति का चरम विराम, स्वामिनारायण अक्षरधाम, चलो चलें हम अक्षरधाम...